परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 22, अंक 2, अगस्त 2015

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2015
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3 के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17–बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली–110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बचन सिंह, बी–275, अवन्तिका, रोहिणी सेक्टर 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मै. पावर प्रिन्टर्स, नई दिल्ली में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 2, अगस्त 2015

विषय सूची

आलेख

राघवेन्द्र प्रपन्न
दलित ज्ञानमीमांसा के प्रश्न एवं विद्यालयी ज्ञान 1

कुमार संजीव
बिहार में गुणवत्तापूर्ण अध्यापक शिक्षा की योजना एवं प्रबंधन 21

नीलम दलाल
अध्यापक पात्रता परीक्षण एवं गुणवत्ता का आलोचनात्मक विमर्श 29

अजय कुमार सिंह
द्वंद्व, हिंसा और बच्चों की शिक्षा : सैद्धांतिक रूपरेखा की पड़ताल 41

शोध टिप्पणी / संवाद

आर.पी. पाठक एवं **अमिता पाण्डेय भारद्वाज**
माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों का अध्ययन 69

ललित कुमार एवं **इम्तियाज आलम**
उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता के प्रभावी कारक 83

संजीव कुमार शुक्ला
सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन 91

सुरेन्द्र कुमार एवं **मुरलीधर मिश्रा**
राजस्थान के अजमेर संभाग में प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता की प्रवृत्ति 103

राजीव जोशी
मध्य हिमालयी पहाड़ी (कुमाउँनी एवं गढ़वाली) भाषाओं की भाषिक विशेषताएं 117

चिंतक और चिंतन

जितेन्द्र सिंह गोयल
राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के परिप्रेक्ष्य में डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचार 127

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 2, अगस्त 2015

दलित ज्ञान मीमांसा के प्रश्न एवं विद्यालयी ज्ञान

राघवेन्द्र प्रपन्न*

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र के चार केंद्रीय सरोकार हैं। पहला, दलित ज्ञान-मीमांसा द्वारा खड़े किए जाने वाले प्रश्नों के आधर पर हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों के सामाजिक एवं शिक्षणशास्त्रीय जगत को समझने का प्रयास। दूसरा, दलित दृष्टिकोण से पिछले डेढ़ दशकों की माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर की हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों (एनसीईआरटी द्वारा तैयार की गई) के समक्ष उपस्थित नीतिगत संदर्भ की पहचान। तीसरा, इस संदर्भ में उपरोक्त पाठ्यपुस्तकों के संवादी-असंवादी चरित्र की पड़ताल। चौथा, नीतिगत, शैक्षिक एवं विमर्शगत दलित संदर्भ में पाठ्यचर्या एवं पाठ्यपुस्तकों की संगति-असंगति एवं द्वन्द्वों की व्याख्या और विवेचना।

सामाजिक न्याय एवं समता के दर्शन को मजबूती पहुँचाने वाला दलित विमर्श पिछले दो दशकों से ज्ञान की विभिन्न धाराओं में अपनी पुरजोर उपस्थिति दर्ज करवा रहा है। हिन्दी अनुशासन के पटल पर भी इसे साफ अनुभव किया जा सकता है। इसका सबूत यह है कि बीसवीं सदी के दूसरे-तीसरे दशक में सक्रिय दलित रचनाकारों में हीराडोम, अछूतानंद हरिहर, केवलानन्द की परम्परा आज एक मजबूत धारा बन गई है। दलित ज्ञानमीमांसा ने ज्ञान के विभिन्न अनुशासनों सहित विद्यालयी ज्ञान के चरित्र पर भी प्रश्न खड़े किए। पर अध्ययन बतलाते हैं कि विद्यालयी ज्ञान ने इसकी अनसुनी कर दी (एनसीईआरटी 2010)। अध्ययन बतलाते हैं कि दलित परिप्रेक्ष्य से विद्यालय की पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों का सामाजिक चरित्र निराशाजनक है (भारत सरकार, 1990; ऐलक्रया 1996; बाला 1997; कुमार 1998; केब 2005)।

एक तरफ तो विद्यालयी ज्ञान की दलित परिप्रेक्ष्य के लिहाज से निराशाजनक स्थिति है और दूसरी तरफ यह तथ्य भी है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं 1992,

*दिल्ली विश्वविद्यालय के महर्षि वाल्मिकी कॉलेज ऑफ एजूकेशन में अध्यापनरत हैं तथा शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय में पी-एच.डी. शोध-छात्र हैं।

राममूर्ति समिति 1990, शिक्षा में दलित विमर्श, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के बच्चों की शिक्षा पर आधार पत्र 2005 (एनसीईआरटी 2010), पाठ्यचर्या 2005 (एनसीईआरटी 2006) शिक्षा में दलित बहिष्करण की विभीषिका को तवज्जो के साथ उभारते हैं तथा दलित सरोकारों को पाठ्यपुस्तकों में बहाल करने की पुरजोर वकालत करते हैं। अत: इस ऐतिहासिक विरोधभासी परिप्रेक्ष्य में यह समीचीन होगा कि उपरोक्त संदर्भ में वर्तमान पाठ्यपुस्तकों की अवस्थिति की पड़ताल की जाए।

इस उद्देश्य से यह शोध पत्र एनसीईआरटी द्वारा निर्मित 'विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2000' (आगे से इसे पाठ्यपुस्तक 2000 कहा जाएगा) एवं राष्ट्रीय पाठ्चर्या की रूपरेखा 2005 (आगे से इसे पाठ्यपुस्तक 2005 कहा जाएगा) पर आधरित एनसीईआरटी द्वारा तैयार की गई कक्षा-9 से बारह तक की हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों का अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस शोध पत्र में अब से पाठ्यचर्या 2000 पर आधरित पाठ्यपुस्तकों को पाठ्यपुस्तक 2005 से संबोधित किया जाएगा। यह शोध पत्र पाठ्यपुस्तक 2000 एवं पाठ्यपुस्तक 2005 की गद्य का अध्ययन जिन कसौटियों पर करता है वे हैं - (क) दलित केंद्रित/प्रधान चरित्र वाले पाठ (ख) दलित मुद्दे पर केंद्रित पाठ (ग) गैर-दलित पर दलित पर लिखी रचना। इसी तरह पाठ्यपुस्तक 2000 एवं पाठ्यपुस्तक 2005 के पद्य विधा में दलित कवियत्री/कवि प्रतिनिधित्व, दलित की कविता का प्रतिनिधित्व एवं दलित पर अन्य की कविता के प्रतिनिधित्व का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र, पाठ्यपुस्तक 2000 एवं पाठ्यपुस्तक 2005 की कक्षा-9 से 12 तक की हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों में उपरोक्त कसौटियों के प्रतिनिधित्व की पड़ताल करता है। इस तरह से यह शोध पत्र दलित परिप्रेक्ष्य से उपरोक्त पाठ्यपुस्तकों के सामाजिक चरित्र को पहचानने का प्रयास करता है। सबसे पहले गद्य विधा में दलित सरोकार, मुद्दे, दलित लेखन के लिए जगह के आधार पर पाठ्यपुस्तक 2000 एवं पाठ्यपुस्तक 2005 की यहाँ तुलनात्मक सारिणी पेश की जा रही है।

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति : मुद्दे एवं लेखन के लिए जगह - गद्य विधा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं 1992, राममूर्ति समिति, शिक्षा में दलित विमर्श, पाठ्यचर्या 2005 का आधार पत्र, पाठ्यचर्या 2005 शिक्षा में दलित बहिष्करण की विभीषिका को तवज्जो के साथ उभारते हैं तथा दलित सरोकारों को पाठ्यपुस्तकों में बहाल करने की पुरजोर वकालत करते हैं अत: यह प्रासंगिक होगा कि पाठ्यचर्या 2000 एवं 2005 उन पर आधरित पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण दलित सरोकार की कसौटी पर किया जाये।

तालिका-1

पाठ्यपुस्तक 2000 एवं पाठ्यपुस्तक 2005 की तुलना (कक्षा 9 - 12 हिन्दी)
दलित सरोकार, मुद्दे, दलित लेखन एवं दलित लेखक के लिए जगह

विधा - गद्य									
1	2	3	4	5	6	7		8	
		पाठ्यपुस्तक 2000		पाठ्यपुस्तक 2005		2000	2005	अंतर प्रतिशत में	
		संख्या	प्रतिशत में	संख्या	प्रतिशत में	संख्या	प्रतिशत में	2000	2005
1	दलित केंद्रीत प्रधान चरित्र	01/68	1.44%	1/69	1.44%	2/137	1.45%	0%	0%
2	दलित मुद्दों पर रचना	01/68	1.44%	0/69	0%	1/137	0.72%	1.44%	
3	दलित लेखक	01/68	1.47%	1/69	1.44%	2/137	1.45%		0%
4	गैर-दलित की दलित पर रचना	0/68	0.00%	0/69	0.00%	0	0.00%		0%

उपरोक्त कसौटी पर पाठ्यपुस्तक 2000 एवं पाठ्यपुस्तक 2005 के गद्य विधा के अध्ययन से प्राप्त आँकड़ों को निम्न तालिका में पेश किया जा रहा है।

उपरोक्त तालिका का अवलोकन यह बतलाता है कि अध्ययन में शामिल पाठ्यपुस्तकों में दलित प्रतिनिधित्व, दलित मुद्दे एवं स्वर एकदम से नदारद हैं। गद्य-विधा में पाठ्यपुस्तक 2000 एवं पाठ्यपुस्तक 2005 की कुल 16 पाठ्यपुस्तकों के 137 पाठों में केवल दो ही रचनाएं दलित मुद्दे पर हैं, जोकि दलित लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि की हैं। उसमें से एक पाठ्यपुस्तक 2000, 12 ऐच्छिक, साहित्य मंजूषा, भाग-2 में 'मेरी जीवन यात्रा : दो चित्र' शीर्षक से है। दूसरी पाठ्यपुस्तक 2005 की कक्षा 11 ऐच्छिक, अन्तरा, भाग 1 में 'खानाबदोश' शीर्षक से है। प्रतिशत के हिसाब से अगर देखें तो 1.45% दलितों की आवाजों को प्रतिनिधित्व मिला है। अलग-अलग देखें तो पाठ्यपुस्तक 2000 और पाठ्यपुस्तक 2005 में दलित आवाज को स्थान देने के लिहाज़ से कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही तरह की पाठ्यपुस्तकों ने हिन्दी साहित्य के आधुनिक समय में दलित वाणी के प्रतीक बन चुके ओमप्रकाश वाल्मीकि की एक-एक रचना को शामिल करना सहूलत भरा है। धयातव्य है कि पाठ्यपुस्तक 2005 में वाल्मीकि की रचना 'खानाबदोश' में कोई दलित मुद्दा अथवा दलित चरित्र नहीं है, वह कहीं से भी दलित विडंबना, शोषण की बात नहीं करता। इसमें ''मजदूरी करके किसी तरह गुजर-बसर कर रहे मजदूर वर्ग के शोषण और यातना को चित्रित किया गया है। मजदूर वर्ग यदि ईमानदारी से मेहनत-मजदूरी करके इज्जत के साथ जीवन चाहता है, तो सूबे सिंह जैसे समृद्ध और ताकतवर लोग उन्हें जीने नहीं देते। कहानी इस बात की ओर भी संकेत करती है कि मजदूर वर्ग हमारे समाज की जातिवादी मानसिकता से नहीं उबर पाया है। कहानी में वास्तविकता उत्पन्न करने में इसके स्थानीय संवाद सहायक बने हैं'' (एनसीईआरटी, 2006, अंतरा, भाग-1)। निष्कर्ष यह कि यह दलित लेखक की रचना तो है पर दलित मुद्दे पर नहीं है। यानी दलित लेखक का तो प्रतिनिधित्व है पर अध्ययन में शामिल पाठ्यपुस्तक गद्य-विधा से दलित मुद्दे बिल्कुल नदारद है। यानी कुल 69 गद्य के पाठ में एक भी दलित मुद्दे को रेखांकित करने वाला पाठ नहीं है।

पाठ्यपुस्तक 2000 की गद्य-विधा में ओमप्रकाश वाल्मीकि का एक पाठ है, 'मेरी जीवनयात्रा : दो चित्र'। पाठ का परिचय देते हुए पाठ्यपुस्तक कहती है, ''प्रस्तुत पाठ उनकी आत्मकथा जूठन से लिए गए दो अंशों पर आधारित है। प्रथम अंश में उन्होंने अपने अध्ययन काल के अनुभवों तथा जातिगत अपमान की असह्य पीड़ा का मार्मिक वर्णन किया है। दूसरे अंश में समाज में हो रहे सकारात्मक परिवर्तनों का जिक्र है जहाँ जातीय दंश उत्तरोत्तर कम होता गया है। इस अंश में उनके हिंदी साहित्य के अध्ययन तथा साहित्य-सृजन

की ओर प्रवृत्त होने का भी उल्लेख है'' (एनसीईआरटी, 2003, पृ. 89)। पाठ्यपुस्तक में दिए गए पाठ परिचय से साफ होता है कि यहाँ जो पाठ है उसका आधा हिस्सा ही दलित शोषण, उत्पीड़न की बात करता है और उसका दूसरा अंश तुरंत ही उसको संतुलित कर देता है। वह बताता है कि अब सकारात्मक बदलाव आ रहे हैं, अब पहले जैसी बात नहीं रही। यानी एक अंश जहाँ दलित उत्पीड़न की बात करता है वहीं दूसरा अंश दलित उत्पीड़न को अब धीरे-धीरे बीते हुए दिन की बात साबित करने की ओर बढ़ता है। निष्कर्ष है कि पाठ्यपुस्तक 2000 जमा पाठ्यपुस्तक 2005 की सोलह पाठ्यपुस्तकों के गद्य-विधा के कुल 137 पाठों में कायदे से एक भी सम्पूर्ण पाठ ऐसा नहीं है जो सवर्ण समाज के द्वारा दलितों पर किए जाने वाले अत्याचार, दमन के दाह को ठीक से उभारे। कुल मिला-जुलाकर आधा पाठ है पर वहीं उसका दूसरा अंश पाठ उसको संतुलित कर देने वाला है। दलित संवेदना की कसौटी पर गद्य-विधा को कसने पर तुलनात्मक रूप से यह कहा जा सकता है कि आधे पाठ के रूप में ही सही पर पाठ्यपुस्तक 2000 अपनी पश्चवर्ती पाठ्यपुस्तक, पाठ्यपुस्तक 2005 से बहुत ही मामूली-सा ही सही पर आगे नजर आती है।

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति : मुद्दों एवं लेखन के लिए जगह – पद्य-विधा

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की कसौटी पर पद्य विधा भी कोई आशाजनक नहीं है (देखिए तालिका-2)

तालिका-2

पाठ्यपुस्तक 2000 एवं पाठ्यपुस्तक 2005 की तुलना (कक्षा 9-12 हिन्दी)
दलित सरोकार, मुद्दे, दलित लेखन, दलित लेखक के लिए जगह

पद्य-विधा							
1	2	3	4	5	6	7	
		पाठ्यपुस्तक 2000		पाठ्यपुस्तक 2005		2000-2005	
		संख्या	प्रतिशत में	संख्या	प्रतिशत में	संख्या	प्रतिशत में
1	दलित कवि/कवियत्री	2/93	2.15%	1/75	1.33%	3/168	1.78%
2	दलित की कविता	2/134	1.49%	2/108	1.85%	4/242	1.65%
3	दलित पर कविता (अन्य की)	0/134	0%	1/108	0.92%	1/242	0.41%

पाठ्यपुस्तक 2000 तथा पाठ्यपुस्तक 2005 को मिलाकर कुल सोलह पाठ्यपुस्तकें हैं (कक्षा 9–12 हिन्दी)। इनमें कुल 168 बार कवि अपनी रचनाओं के साथ प्रगट होते हैं। उपरोक्त पृष्ठभूमि में दलित कवि रैदास कुल मिलाकर तीन बार पाठ्यपुस्तकों में आते हैं। उपरोक्त पाठ्यपुस्तकों में कविताओं की कुल संख्या 242 है। इन 242 कविताओं में दलितों की कविता की कुल संख्या सिर्फ 4 है। प्रतिशत के लिहाज से महज़ 1.65 है। अगर यह देखा जाए कि कुल 242 कविताओं में दलित पर कितनी कविता है तो निराशा और भी बढ़ जाती है। 242 कविताओं में मात्र एक ही ऐसी कविता है जिसे माना जा सकता है कि वह दलित पर है। प्रतिशत के लिहाज से यह हुआ कुल 0.41%। पाठ्यपुस्तक 2000 तथा पाठ्यपुस्तक 2005 दोनों पाठ्यपुस्तकों को मिलाकर उपरोक्त कविता एक गैर–दलित कवि सियारामशरण गुप्त की है। कविता का शीर्षक है 'एक फूल की चाह'। यह कविता पाठ्यपुस्तक 2005 के कक्षा–9 (द्वितीय भाषा), स्पर्श, भाग–1 में है।

ध्यातव्य है कि पाठ्यपुस्तक 2000 में रैदास दो कक्षाओं में उपस्थित होते हैं कक्षा–12 आधार, बसंती भाग–2 और कक्षा–12 ऐच्छिक, साहित्य–मंजूषा, भाग–2 में। कक्षा–12 आधार में संकलित पद में ''रैदास ने निर्गुण ब्रह्म के प्रति अपना अनन्य भाव व्यक्त किया है। वे मानते हैं कि ऐसे प्रियतम को अपनाने के बाद किसी और देवी–देवता से कोई संबंध नहीं रह जाता। उसी का एकमात्र भरोसा है'' (एनसीईआरटी, 2003, पृ. 95)। कक्षा–12 ऐच्छिक के संकलित ''पहले पद में रैदास ने भक्ति के लोक–कल्याणकारी रूप का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि सच्ची भक्ति–भावना, जाति, कुल और अमीर–गरीब में कोई भेद नहीं करती। सच्चा भक्त अपनी भगवद्भक्ति के प्रभाव से अपने साथ अपने कुल को भी सांसारिक बंधनों से मुक्ति दिलाता है। दूसरे पद में भगवान की अपार उदारता, कृपालुता और उनके समदर्शी स्वभाव का वर्णन है। रैदास कहते हैं कि भगवान ने तथाकथित निम्न कुल में उत्पन्न भक्तों को भी सहज भाव से अपनाया है और उन्हें लोक में सम्माननीय स्थान दिलाया है'' (एनसीईआरटी, 2003, पृ. 125)। पाठ्यपुस्तक 2005 में रैदास के दो पद हैं। ''पहले पद 'प्रभुजी, तुम चंदन हम पानी' में कवि अपने आराध्य को याद करते हुए उनसे अपनी तुलना करता है। उसका प्रभु कहीं किसी मंदिर या मस्जिद में नहीं विराजता वरन् उसके अपने अंतस में सदा विद्यमान रहता है। यही नहीं, वह हर हाल में, हर काल में उससे श्रेष्ठ और सर्वगुण संपन्न है। इसलिए तो कवि को उन जैसा बनने की प्रेरणा मिलती है। दूसरे पद में भगवान की अपार उदारता, कृपा और उनके समदर्शी स्वभाव का वर्णन है। रैदास कहते हैं कि भगवान ने तथाकथित निम्न कुल के भक्तों को भी सहज–भाव से अपनाया है और उन्हें लोक में सम्माननीय स्थान दिया है'' (एनसीईआरटी, 2006, पृ. 88)।

दरअसल पाठ्यपुस्तक 2000 और पाठ्यपुस्तक 2005 की पुस्तकों में एक पद की पुनरावृत्ति है, ''ऐसी लाल तुझे बिनु''। यह पाठ्यपुस्तक 2000 की कक्षा–12 ऐच्छिक तथा पाठ्यपुस्तक 2005 की कक्षा–9 द्वितीय भाषा में है।

पाठ्यपुस्तक द्वारा कविता परिचय का उपरोक्त उद्धरण यह बतलाता है कि रैदास की जिन रचनाओं को यहाँ शामिल किया गया वस्तुतः उसका संबंध भक्ति–भाव से है, एकाध पंक्ति में निम्न कुल की चर्चा आई है। वह भी उनकी दारुण दशा, उत्पीड़न दिलाने के लिहाज से नहीं बल्कि भगवान की अपार उदारता को दर्शाने के लिए। रैदास के इस पद का परिचय दोनों ही पाठ्यपुस्तकों में दिया गया है। इसमें कहा गया है कि ''भगवान ने तथाकथित निम्न कुल के भक्तों को सहज अपनाया है और उन्हें लोक में सम्माननीय स्थान दिया है।'' ध्यातव्य है कि पाठ्यपुस्तक 2000 और पाठ्यपुस्तक 2005 में शामिल निम्न कुल संबंधी रैदास के पद का परिचय करवाने वाले वाक्य की पुनरावृत्ति है।

पाठ्यपुस्तक 2005 की कक्षा–9 (द्वितीय भाषा) में सियारामशरण गुप्त की कविता 'एक फूल की चाह' जरूर एक ऐसी लम्बी कविता है जो अछूत के उत्पीड़न एवं समाजो–सांस्कृतिक दंश को उजागर करता है। बकौल पाठ्यपुस्तक ''पूरी कविता छुआछूत की समस्या पर केन्द्रित है। एक मरणासन्न 'अछूत' कन्या के मन में यह चाह उठी कि काश! देवी के चरणों में अर्पित किया हुआ एक फूल लाकर कोई उसे देता। कन्या के पिता ने बेटी की मनोकामना पूरी करने का बीड़ा उठाया। वह देवी के मंदिर में जा पहुँचा। देवी की अराधना भी की, पर उसके बाद वह देवी के भक्तों की नजर में खटकने लगा'' (एनसीईआरटी, 2006, पृ. 102)। मानव–मात्र को एक समान मानने की नसीहत देने वाली देवी के सवर्ण भक्तों ने उस बाप को सात दिन कारावास का दण्ड दिलवाया। इसी वजह से वह अपनी मरणासन्न बेटी से उसके जीते जी न मिल सका। इस प्रकार यह कविता पाखण्डी जातिवादी हिन्दू धार्मिकता पर प्रहार करती है। यह दिखलाता है कि प्रभुत्वशाली ब्राह्मणवादी जातिवादी सवर्ण के हाथों में न्यायालय भी एक खिलौना है। कविता यह उजागर करती है कि इस समाज में एक अछूत का उत्पीड़न किस तरह अमानवीयता की हद तक जा कर होता है। यथार्थ रूप में 242 कविताओं में एकमात्र यही कविता दलित संवेदी कविता मानी जा सकती है। इस अर्थ में पाठ्यपुस्तक 2005 अपने पूर्ववर्ती पाठ्यपुस्तक 2000 से बढ़ी हुई चेतना का प्रदर्शन करती है, पर केवल एक कविता के संदर्भ में ही।

दलित सरोकार, मुद्दे एवं लेखन की अनुपस्थिति या चयन का शिक्षणशास्त्र

उपरोक्त विवरण से यह स्थापित हो जाता है कि हिन्दी की पाठ्यपुस्तकें (एनसीईआरटी,

कक्षा 9–12) दलित साहित्य की घनघोर उपेक्षा करती हैं। इन पाठ्यपुस्तकों से दलित विमर्श, दलित मुद्दे, दलित लेखक और दलित प्रधान चरित्र अनुपस्थित हैं। अब सवाल यह उठता है कि क्या यह दलित साहित्य के अभाव के कारण है? इस प्रश्न का उत्तर दलित साहित्य के विमर्श में ढूँढ़ा जा सकता है। यहाँ विधा के आधार पर – कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा – दलित साहित्य की उपस्थिति का एक विहंगम अवलोकन किया जा रहा है। इससे यह साफ होने में मदद मिल सकेगी कि पाठ्यपुस्तकों से दलित साहित्य की अनुपस्थिति की वजह क्या दलित साहित्य का न होना है, अथवा कुछ और।

अगर हम आजादी की लड़ाई के समय से देखें तो दलित साहित्य की समृद्ध परंपरा देखने को मिलती है। इलाहाबाद के रामचन्द्र बनोधा ने धनंजय से भी पूर्व 1950 के पहले ही हिन्दी में बाबा साहब की आत्मकथा लिख दी थी (नैमिशराय, 2012, पृ. 68)। दलित साहित्य में भगवानदास का 'अछूत का बेटा', सन् 1950–60 के बीच देवीदयाल सैन का उपन्यास 'मानव की परख' उल्लेखनीय हैं। इनकी कहानियाँ पचास और साठ के दशक में 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुई थीं। उसी पीढ़ी के सशक्त लेखक और कहानीकार सीताराम खोड़ावाल की कहानियाँ 'पत्रहंता', 'विश्वमित्र', 'शंकराचार्य का अन्तर्द्वन्द्व' विशेष रूप से चर्चित रहीं। ये कहानियाँ प्रकाशन विभाग की 'आजकल' पत्रिका में छपी थीं। वरिष्ठ कवि बिहारी लाल 'हरित' की 'अछूतों का पिस्तौल', 'फूल और शूल', 'गुरु–दक्षिणा' आदि रचनाएँ प्रमुख रहीं। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के निकट सहयोगी रहे डॉ. सोहन लाल शास्त्री, डॉ. शंकरानंद शास्त्री, बागचन्द रतू, उस समय में सक्रिय रचनाकार रहे हैं। इसी तरह डॉ. धर्मवीर की 'हिन्दी की आत्मा', डिन्कर की 'डॉ. अम्बेडकर ग्रंथ', मर्मट जी की 'नागवंश क्यों और कैसे' द्रौपदी हरित की 'हमें जिन पर गर्व है', भगवान दास की 'मैं भंगी हूँ', हरिकिशन संतोषी की 'दलितों में दलित', माता प्रसाद की 'उत्तर प्रदेश की दलित जातियों का दस्तावेज' शोध पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। शोध पुस्तकों की इसी परंपरा में डॉ. आर.सी. जाटव, कुसुम मेघवाल, विमल थोराट, डॉ. श्योराज सिंह 'बेचैन' और रजतरानी मीनू के शोध भी इस क्षेत्र को समृद्ध करते हैं।

दलित कविता के संदर्भ में, कर्ण (2012) का कथन है, ''स्वतंत्रता के बहुत बाद हिन्दी में दलित कविता की शुरुआत हुई। हिन्दी में दलितों के लिए कविता तो कुछ पहले शुरु हुई, किन्तु दलितों की कविता और दलितों के द्वारा कविता की शुरुआत अभी हाल की बात है। लेकिन दलित कवियों ने हिंदी कविता के परिसर में अपनी उपस्थिति नये तेवर के साथ दर्ज कराई है।'' दलित चेतना की सबसे पुरानी रचना है, हीरा डोम की

'अछूत की शिकायत', जो सितम्बर 1914 की 'सरस्वती' में छपी थी। कविता, हिन्दी में न होकर, भोजपुरी में है।

भक्ति आन्दोलन में रविदास, चोखा मेला, तुकाराम जैसे कवियों ने अपनी रचनाओं में दलित समुदाय की आकांक्षा को वाणी दी। बाद में चलकर ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में सवर्ण समाज और उसकी संस्कृति के मूल्यों तथा मान्यताओं पर तीखा आक्रमण देखने को मिलता है। शरद कोकास की कविता 'शुक्र मनाओ' में चुनौती का स्वर उग्र है। कंवल भारती की कविता 'शंबूक' में रामकथा के नये अर्थ की खोज है और इतिहास में दलितों के साथ हुए अन्याय के प्रति गुस्से का भाव भी। दलित होने की अपमानजनक स्थिति की अभिव्यक्ति रामलखन पाल की कविता 'जिन्दगी अपमान की' में है। एन.आर. सागर की कविता 'तब तुम्हें कैसा लगेगा' में दलितों की भोगी हुई यातनाओं के हिसाब की माँग है।

श्री माता प्रसाद मानते हैं कि डॉ. रामकुमार वर्मा का 'एकलव्य', महाकाव्य, डॉ. जगदीश गुप्ता का 'शम्बूक वध' खंड काव्य, श्री नरेश मेहता का 'शबरी खंड काव्य, धनंजय अवस्थी, श्री जयसिंह 'व्यथित' का 'दलित मसीहा' प्रबंध काव्य, डॉ. जगदीश चन्द्र का 'नरककुण्ड में वास', 'कभी न छोड़े खेत', 'धरती धन न अपना' (उपन्यास) ये गैर-दलितों की कृतियाँ हैं, जो दलित साहित्य में उल्लेखनीय हैं। इसके साथ ही इसी क्रम में 'दर्द', गिरिजाशंकर की लम्बी कविता है। श्री आर.सी. प्रसाद सिंह की 'हरिजन', 'तुम स्वतंत्र हो मनुष्य' और 'जाति रंग देश से', श्री भगवती चरण वर्मा की 'हिन्दू', 'कर्ण', श्री सियाराम शरण गुप्त की 'एक फूल की चाह', श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान की 'प्रभु तुम मेरे मन की जानो', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की 'भिखारी', 'वह तोड़ती पत्थर', अवधेश बिहारी अवधेश की 'छूत छतीसी', हरिवंश राय बच्चन की 'मिट्टी के द्रोणाचार्य', बालकृष्ण शर्मा नवीन, रांगेय राघव, ज्ञानेन्द्रपति की कुछ कविताओं की गणना दलित साहित्य की श्रेणी में आती है (राय, 2012, पृ. 46)। इसके अलावा धूमिल का 'मोचीराम', नागार्जुन का बिहार के बेलछी गाँव में हुए नरसंहार पर लिखी कविता 'हरिजन गाथा' उल्लेखनीय है। इस पर टिप्पणी करते हुए प्रसिद्ध आलोचक मैनेजर पाण्डेय कहते हैं, ''नागार्जुन की कविता 'हरिजन गाथा' अनेक कारणें से हिन्दी में स्वाधीनता के बाद दलित जीवन पर लिखे साहित्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उसमें सवर्ण समुदाय की दरिंदगी, दलितों की लाचारी और भारतीय राजसत्ता की मक्कारी की अभिव्यक्ति है और साथ ही दलितों के सामाजिक विद्रोह की संभावना के संकेत भी'' (शुक्ल, 2012, पृ. 28)।

कथा साहित्य में डॉ. एन. सिंह, जैसे दलित विमर्शकार एवं मैनेजर पाण्डेय जैसे आलोचकों का मानना है कि कथा सम्राट प्रेमचंद का 'ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति', 'दूध का दाम', 'मंत्र', 'घासवाली', 'मन्दिर', 'बाबा का भोग', निराला की 'चतुरी चमार' (कथा संग्रह) जैसी रचनाओं में दलित समुदाय की स्थिति और उसकी यातना की गहरी अनुभूति है (शुक्ल, 2012 एवं कोटनाला, 2012)।

हिन्दी के दलित कथाकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'हंस' में प्रकाशित कहानियाँ 'बैल की खाल' और 'सलाम' काफी चर्चा में रही। इसके अलावा 'जिनावर', 'शवयात्रा', 'चूड़ाघर', 'ग्रहण', 'मुंशी जी का गिलास', 'अम्माँ' मोहनदास नैमिशराय की 'आवाजों' तथा 'अपना गाँव' भी उल्लेखनीय हैं। डॉ. दयानन्द बटेही का कथा-संग्रह 'कफनखोर', 'सुरंग', रामकुमार सिंह की कहानी 'नम्बर', विभांशु दिव्याल की कहानी 'गंडासा', 'हंस' में प्रकाशित अमरीक सिंह 'दीप' की कहानी 'नाचो जी.आर. चार', बी.एल. नैक्कयर की कहानी 'चतुरी चमार की चाट', राजेन्द्र लहरिया की 'यहाँ कुछ लोग थे' दलित कथा-साहित्य में चर्चित रहे हैं। 'पानी का पैबन्द', बिहार में हुए नरसंहार पर विपिन बिहारी की मार्मिक कहानी मानी जाती है। रमणिका गुप्ता का मानना है कि प्रहलादचन्द्र दास की 'लटकी हुई शर्त और 'नचनी काकी' वर्ग चेतना की अद्भुत कहानियाँ है (गुप्ता, 2012) इसी क्रम में ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'पच्चीस चौक डेढ़ सौ', अवधेश प्रीत की कहानी 'तालीम', मदन मोहन की 'हारू', 'शिवमूर्ति की 'त्रिशूल', रत्नकुमार संभरिया की 'क्षितिज', कुसुम मेघवाल की 'मंगली' तथा 'अंगारा', डॉ. कुसुम वियोगी की 'अन्तिम बयान' तथा 'और वह पढ़ गई', सूरजपाल चौहान की 'आज की अहिल्या', जयप्रकाश कर्दम की 'सांग', डॉ. सुशीला टाँकभौर की 'सिलिया' उल्लेखनीय है। 'कथादेश' ने अगस्त 2001 के अंक में भी श्री दूधनाथ सिंह की 'निष्कासन' तथा अखिलेश की 'ग्रहण' कहानी छापी। इस पर टिप्पणी करते हुए सिंह, नामवर का कहना है, ''दूधनाथ सिंह जी की अभी हाल ही में एक कहानी छपी है 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे'। और यह कहानी दलितों के जीवन के ऐसे पहलू के बारे में लिखी गई है जैसा न तो हिन्दी के दलित साहित्य में लिखा गया है और न मराठी के दलित साहित्य में देखा गया है'' (सिंह, 2014, पृ. 20)।

दलित समस्या को लेकर कुछ उपन्यास भी लिखे गए हालांकि ये संख्या में बहुत नहीं है। सिंह, डॉ. एन का मानना है कि जयप्रकाश कर्दम का उपन्यास 'छप्पर' पहला दलित उपन्यास है (सिंह, 2012, पृ. 60)। ध्यातव्य है कि दलित साहित्य में स्वयं दलित समाज के अन्तर्विरोध को अनदेखा नहीं किया गया है। उदाहरण के लिए यहाँ दो उपन्यासों को लिया जा सकता है। विभावरी शिरुरकर ने अपने उपन्यास 'कलि' में यह दिखाया है कि किस

प्रकार दलितों की बेहतरी के लिए संघर्षरत 'आवा' को उसकी जात के लोग खत्म कर देते हैं। यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' कृत 'हजार घोड़ों का सवार' में 'गीधू' की हत्या के लिए भी उसकी ही जाति के लोग जिम्मेदार हैं। इसके साथ ही गिरिराज किशोर का 'परिशिष्ट' तथा 'यथा प्रस्तावित', नागार्जुन का 'बलचनमा', अमृत लाल नागर का 'नाच्यौ बहुत गोपाल', हरिसुमन बिष्ट का 'आसमान झुक रहा है', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का 'अलका' और 'निरुपमा', 'चतुरी चमार', 'बिल्ले सुर बकरीहा' भी उल्लेखनीय हैं। सत्यप्रेमी मानते हैं कि प्रेमचन्दोत्तर काल के प्रमुख उपन्यासकारों में आचार्य चतुरसेन लिखित उपन्यास 'गली में सामन्ती बंदी गृहों में कैद मानवीय अधिकारों से सर्वथा वंचित दास-दासियों की पीड़ा को आवाज मिली है। इन्हीं के दूसरे उपन्यास 'उदयाग्रस्त', दलितों में अधिकार पाने के लिए चेतना को दर्शाने वाला उपन्यास है। 'शेखर : एक जीवनी' के प्रथम भाग में अज्ञेय दक्षिण भारत में व्याप्त छूआछूत तथा वर्गभेद को मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करते हैं (सत्यप्रेमी, 2012, पृ. 94)। इसी के साथ मेहतर समाज की त्रासदी और उसके संघर्ष पर संवेदनशीलता और अंतरंगता के लिए मदन दीक्षित का उपन्यास 'मोरी की ईंट' का जिक्र भी आवश्यक है (सिंह, 2012, पृ. 54)। इसके साथ ही मोहनदास नैमिशराय की 'मुक्तिपर्व' भी चर्चित रही है।

सत्यप्रेमी दलित मुद्दे पर लिखित उपन्यासों की एक बड़ी सूची मुहैया करवाते हैं विस्तार कुछ इस प्रकार है– रामदरश मिश्र 'जल टूटता हुआ', जगदीश चन्द्र 'धरती धन न अपना', मधुकर सिंह 'जंगली सुअर', रांगेय राघव 'कब तक पुकारूँ', उदयशंकर भट्ट कृत 'सागर, लहरें और मनुष्य', भगवती चरण वर्मा 'भूले-बिसरे चित्र', अमृतराय 'बीज', रेणु 'मैला आँचल', यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र 'पत्थर के आँसू' तथा 'हजार घोड़ों का सवार', भैरव प्रसाद 'सती मैक्रया का चौरा', गोविन्द बल्लभ पंत 'जूनिया', आगरिगफडि 'नदी का शोर', मधुकर सिंह 'सबसे बड़ा छल', गोपाल उपाध्याय 'एक टुकड़ा इतिहास', दयाशंकर मिश्र 'छोटी बहू', ब्रजभूषण 'मंगलोदय', दामोदर सदन 'नदी के मोड़ पर', रामकुमार भ्रमर 'मोतिया', नरेश मेहता 'नदी यशस्वी है', भीष्म साहनी 'बसंती', बाला दूबे 'मकान दर मकान', रमेशचन्द्र शाह 'बिस्सा गुलाम', भगवती शरण उपाध्याय 'खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर', राहुल सांस्कृत्यायन,'सिंह सेनापति', संतराम, 'हमारा समाज', तरसेम गुजराल, 'मटमैला आकाश' आदि प्रमुख हैं।

नाटकों में भी भीमसेन 'संतोष' का 'शोषितों के नाम', माता प्रसाद का 'अछूत का बेटा', संभरिया का 'समाज की नाक', कर्मशील भारती का 'फांसी', एन.आर. सागर का 'अंतिम अवरोध' और नैमिशराय का 'हैलो कॉमरेड', 'अदालतनामा', 'डेढ़ इंच

मुस्कान', 'क्या मुझे खरीदेंगे', काव्य संग्रह में भागीरथ का 'पीढ़ियों का सवाल', पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी का 'सवालों के सूरज', श्यौराज सिंह 'बेचैन' का 'क्रौंच हूँ मैं', दयानन्द बटोली का 'यातना की आँखें', ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'सदियों के संताप', डॉ. कुसुम वियोगी का 'व्यवस्था का पक्षधर', सूरजपाल चौहान का 'प्रयास' आदि काव्य-संग्रह छपे। इसी श्रृंखला में डॉ. एन. सिंह द्वारा संपादित 'दर्द के दस्तावेजा', दयानन्द बटोही का कहानी संग्रह 'सुरंग', समकालीन लेखक जयप्रकाश कर्दम का उपन्यास 'छप्पर', उसके पहले के बाबू लाल खाण्डा के उपन्यास 'धापो दाई', कापड़िया का 'मिट्टी की सौगंध' का नाम लिया जा सकता है। वरिष्ठ दलित लेखक श्री माता प्रसाद का नाटक 'अंतहीन बेड़ियाँ' 2012 के आस-पास हुआ है।

हिन्दी में आई आत्मकथा के क्षेत्र में दया पवार की 'अछूत', शरण कुमार लिंबाले की 'मक्करमाशी', शंकर राव खरात की 'तराल-अंतराल', प्रो. ई. सोनकांबले की 'यादों के पंछी', लक्ष्मण माने की 'पराया' और लक्ष्मण गायकवाड़ की 'उठाईगिरि' आदि। हिन्दी भाषा में ही लिखी गई मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत' उल्लेखनीय हैं।

स्वाधीनता के बाद दलित-जीवन पर लिखने वाले महत्वपूर्ण गैर-दलित लेखकों की रचनाएं हैं - अमृतलाल नागर का उपन्यास 'नाच्यौ बहुत गोपाल', शैलेश मटियानी का उपन्यास 'गोपुली गफूरन' व 'नागवल्लरी', जगदीश चन्द्र का 'धरती घन न अपना' और गोपाल उपाध्याय का 'एक टुकड़ा इतिहास'। बिहार के बेलछी नामक गाँव में दलितों के नरसंहार पर मन्नू भण्डारी का उपन्यास 'महाभोज' भी इस संदर्भ उल्लेखनीय है।

अब सवाल यह उठता है कि जिस समय एनसीईआरटी की नई पाठ्यपुस्तकें बन रही थीं उस समय उनके पास दलितों के बारे में कैसी शैक्षिक चेतना का संदर्भ उपलब्ध था। इस संबंध में एनसीईआरटी द्वारा तैयार की गई पाठ्यचर्या 2005 एवं 'अनुसूचित जाति और जनजाति के बच्चों की समस्याएं' नामक आधार पत्र को देखना प्रासंगिक होगा।

पाठ्यचर्या 2005 इस बात को रेखांकित करती है, कि ''कक्षा में शिक्षक व शिक्षार्थी की अंत:क्रिया विवेचनात्मक होती है क्योंकि उसमें यह परिभाषित करने की ताकत होती है कि किसका ज्ञान, स्कूल-संबंधी ज्ञान का हिस्सा बनेगा और किसकी आवाज उसे आकार देगी।'' (एनसीईआरटी, 2006, पैरा 2.4.5, पृ. 26)। उपरोक्त उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि पाठ्यचर्या स्कूली ज्ञान के वर्गीय चरित्र के संबंध में स्पष्ट है। बात चूँकि भारतीय संदर्भ में हो रही है तो वर्ग, हैसियत एवं जाति इससे जुड़ ही जाती है। उपरोक्त उद्धरण के आधार पर पाठ्यचर्या 2005 से उम्मीद की जाती है कि वह

विवेचनात्मक चिंतन की बात करते हुए जाति, वर्ग तथा हैसियत के साथ स्कूली ज्ञान के जटिल रिश्ते का ध्यान रखेगा। पाठ्यचर्या 2005 यह मानती है कि वंचित पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों की दुनिया और उनकी वास्तविकताएँ स्कूली ज्ञान में बहुत कम ही दिखलाई देती हैं। पाठ्यपुस्तकों में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों का प्रतिनिधित्व, उनकी आवाज एवं उनकी दुनिया क्यों शामिल होनी चाहिए इस संबंध में पाठ्यचर्या-2005 स्वयं तर्क देती है, ''लिंग, जाति, वर्ग एवं धर्म की समुदाय आधारित अस्मिता, प्राथमिक अस्मिता होती है लेकिन वह बेहद उत्पीड़क भी हो सकती है और सामाजिक भेदभाव और ऊँच-नीच को कई बार पुख्ता भी करती है। स्कूली ज्ञान वह दृष्टि भी दे सकता है जिसके द्वारा बच्चे सामाजिक यथार्थ की एक आलोचनात्मक समझ बनाएँ। स्कूली ज्ञान बच्चों को ऐसे मौके भी दे सकता है कि वे घर के अनुभवों और वहाँ पैदा हुई चिंताओं के बारे में बात कर पाएँ।'' (वही, 2006, पैरा 2.4.8, पृ. 37)।

सामान्य तौर पर यह नहीं माना जाता कि विज्ञान के ज्ञान का सीधा-संबंध समाज से है जितना की सामाजिक विज्ञान का। पर इस रूढ़ि को भी तोड़ते हुए पाठ्यचर्या 2005 कहती है कि आर्थिक, वर्गगत, लिंगगत, जातिगत, धर्मगत एवं क्षेत्रगत अंतर को कम करने के लिए और इस तरह सामाजिक बदलाव के लिए विज्ञान की पाठ्यचर्या का इस्तेमाल किया जाना चाहिए (वही, पैरा 3.3.2, पृ. 56)। पाठ्यचर्या 2005 पर्याप्त सावधान है कि विद्यार्थियों के बीच कराई जाने वाली गतिविधियाँ कहीं लिंग एवं जाति के आधार पर न बँट जाएँ (वही, पैरा 3.7, पृ. 66)। ज्ञान को विद्यार्थी के परिवेश से जोड़ने की अनेक कड़ियाँ ढूँढ़ने के क्रम में पाठ्यचर्या जैव-विविधता पर भी आती है और सुझाव देती है कि इस प्रकार की समझ को अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों के जीवन से भी जोड़ा जाए, ''क्योंकि वे अपनी जीविका के लिए अक्सर प्राकृतिक जैव-विविधता पर निर्भर होते हैं। स्वास्थ्य शिक्षा के संदर्भ में वह यह मानती है कि चूँकि आदिवासियों को जंगली पौधे उन्हें पोषक तत्व देते है अत: इस शिक्षा के संदर्भ को भी आदिवासियों से जोड़ना उपयोगी होगा (वही, पैरा 3.9, पृ. 73)।

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की अवस्थिति ज्ञान के इतिहास में क्या रही है इसको उजागर करते हुए आधार-पत्र 2005 'अनुसूचित जाति और जनजाति के बच्चों की समस्याएँ' कहता है:

> पाठ्यचर्या सैद्धांतिक प्रभुत्व और नायकत्व के मध्यस्थ के रूप में कार्य करती है जिसका प्रमाण ज्ञान के चुनाव और संरचना, शिक्षणशास्त्रीय व्यवहार और छोटे समूहों के सिद्धान्तों एवं संस्कार के कमजोर एवं विकृत प्रतिनिधित्व में

> मिलता है। औपनिवेशिकता के बाद की शिक्षा नीति के भारतीयकरण का जो पाठ्यचर्या बदलाव का उद्देश्य था, नतीजा यह निकला की शिक्षा नीति की मुख्य विशेषता, ब्राह्मणीकरण के रूप में सामने आई।
>
> जाति, लिंग, जनजाति और धर्म के संरचनात्मक दमन के ऐतिहासिक महत्व को एक शाला पाठ्यचर्या द्वारा अदृश्य बना दिया गया जिसमें सांस्कृतिक रूप से बहुतायतवादियों के राष्ट्रीयता संबंधी विचारों की प्रधानता थी। ज्ञान की ब्राह्मणवादी रचना का प्रमाण था – विशिष्ट प्रकार की मानसिक क्षमताओं का गुणगान और ब्राह्मणवादी भाषा, साहित्य, इतिहास की प्रधानता के साथ-साथ पाठ्यचर्या, विषयवस्तु में ब्राह्मणवादी धार्मिक-सांस्कृतिक व्यवहार, जिद्द एवं जीवन-प्रणाली। मूल सुधार के रूप में इसमें था – शारीरिक श्रम, 'कमतर' बोलियों, संस्कृतियों, परम्पराओं और निम्न जातियों की उत्पादक प्रक्रियाओं के मूल ज्ञान और उनके सामाजिक-सांस्कृतिक आवासों की अवमानना। इनके ज्ञान, मूल्यों और कौशलों को शाला पाठ्यचर्या में कोई भी जगह नहीं मिल पाई न ही इनकी कहानियों, संगीत, गीत, लोककथाओं एवं सांस्कृतिक और धार्मिक व्यवहारों को ही स्थान मिला। (एनसीईआरटी, 2005, पृ. vi-vii)।

भारत में आधुनिकीकरण को तो अपनाया गया पर सतही तौर पर जैसे कि प्रजातांत्रिक समाजवादी मूल्य मुख्यतया धारणागत रहे। उच्च जाति के राष्ट्रवादी विचारों से ग्रस्त पाठ्यचर्या ने अम्बेडकर-फूले द्वारा भारतीय समाज के संबंध में देखी गई नई नैतिक व्यवस्था को जगह नहीं दी। पाठ्यचर्या ने दलित ज्ञान-मीमांसा, ज्ञान और प्रतिरोध को कोई जगह नहीं दी। अनुसूचित जनजाति के सांस्कृतिक अधिकार और उनके इतिहास और सांस्कृतिक अधिकार पाठ्यचर्या से बाहर हैं। पेपर मानता है कि शिक्षा के साथ अनुसूचित जनजातियों का रिश्ता एकहरा और संगत न होकर दोहरा और विरोधाभासी है। शिक्षा ने इनकी भाषा, संस्कार, पहचान एवं अस्मिता का विनाश करने तथा उनमें उनकी नकारात्मक आत्मछवि बनाने में ही अपनी भूमिका निभाई है। यह सब विकास एवं राष्ट्रवाद के रास्ते पर चलने के नाम पर हुआ है। शिक्षा ने उनकी अनियमित मुक्त संस्कृति, समतावादी समाजीकरण और अधिगम व्यवहारों का ध्यान नहीं रखा। इस तथाकथित राष्ट्रीय एवं विकासवादी शिक्षा ने जनजातीय विद्यार्थियों की विशेष बौद्धिक क्षमताओं को जानने एवं पहचानने की कोशिश नहीं की। उपरोक्त आधार-पत्र यह रेखांकित करता है कि ''संबंधित साक्ष्य दर्शाते हैं कि शिक्षक की पूर्व संकल्पनाएँ, धारणा एवं व्यवहार, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष, चेतन अथवा अवचेतन रूप से अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के बालकों के विरुद्ध भेदभाव करने का कार्य करती है'' (वही, पृ. vii)।

आधार पत्र यह स्थापित करता है कि पाठ्यचर्या में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के ज्ञान एवं संसार का प्रतिनिधित्व न केवल केंद्रीय मुद्दा है बल्कि केंद्रीय मुद्दों में भी सर्वोपरि है। आधार-पत्र 2005 यह पाता है कि पाठ्यचर्या में दलित वर्ग के चिन्तकों को स्थान नहीं दिया गया। यही वजह है कि ''पाठ्यचर्या में आधिपत्य, जाति और पितृसत्तात्मक परम्परा के ख़िलाफ सामने आये फूले, अम्बेडकर और पेरियार या आयोथिदास के विचारों को स्थान नहीं दिया गया और न ही इसमें जाति, जेंडर, आदिवासी, दलित, ज्ञान-मीमांसा द्वारा दी गई चुनौतियाँ, ज्ञान और विरोध पर चिंतन किया गया (वही, पैरा 4.1, पृ. 25) उपरोक्त के समर्थन में कई अध्ययन उधृत किए गए हैं। मसलन कृष्ण कुमार, (1990) एवं कांचा एलैक्या (1996) आदि।

उपरोक्त आधार-पत्र इस निष्कर्ष पर पहुंचता है, ''राष्ट्रीय अथवा राजकीय शाला पाठ्यचर्या ने अथवा शिक्षक शिक्षा पाठ्यचर्या ने कभी भी इन नए मूल्यों से चैतन्य रूप में कोई दिशा-निर्देश नहीं लिया था। आज उनके मुद्दे और समस्याएं पाठ्यचर्या की परिधि के बाहर ही रहे और इसमें इनका प्रतिनिधित्व यदि कभी हुआ भी तो वह बेहद कमजोर और विकृत था'' (वही, पैरा 4.1, पृ. 25) यह बहुत स्पष्ट है कि पाठ्यपुस्तकें, अनुसूचित जाति की ही तर्ज पर अनुसूचित जनजाति को जगह नहीं देतीं और अगर कहीं नजर आ भी जाएं तो वे वहाँ अक्सर उच्च जाति के पात्रों की खिदमत की भूमिका में ही होते हैं या फिर उन्हें पिछड़ा हुआ और विचित्र दिखलाया जाता है।

अब सवाल यह है कि दलित वंचित बहिष्करण एवं नीतिगत और शैक्षिक दस्तावेज़ों में निहित विमर्श के साथ पाठ्यचर्या व पाठ्यपुस्तकों की असंगति को समझा कैसे जाए, उसकी व्याख्या और विवेचना क्या है। दस्तावेजीकरण, शिक्षा का उद्देश्य, आमजन की भागीदारी ऐसी ही कुछ अवधारणाएं हैं जिनके जरिए कुछ दूर तक उपरोक्त विडम्बना की व्याख्या एवं विवेचना की जा सकती है।

दस्तावेजीकरण का अभाव

पाठ्यपुस्तक निर्माण की प्रक्रिया के दस्तावेजीकरण का न होना भी पाठ्यपुस्तक निर्माण की प्रक्रिया को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। 1964-66 के कोठारी आयोग ने भी किताबों की निम्न गुणवत्ता पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि किताबों को रचने की तैयारी में शोध की कमी और शिक्षा क्षेत्र के विद्वानों की उदासीनता के कारण ऐसी खराब स्थिति बनी है (एनसीईआरटी पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार-पत्र, 2006 : 7)। पाठ्यचर्या निर्माण की प्रक्रिया पर प्रो. अनिल सद्गोपाल (2005: 34) जो राष्ट्रीय संचालन समिति के सदस्य रह चुके हैं की टिप्पणी महत्वपूर्ण है। उन्होंने यह

उजागर किया है कि इस समूची प्रक्रिया में विधि का अभाव रहा है। इसमें मुद्देवार चर्चा नहीं हुई है। सदस्यगण उन मुद्दों पर बोलते थे जो उन्हें माफिक बैठता था, इस तरह प्रत्येक अन्त:क्रिया अपना स्वायत्त इयत्ता बना लेती थी जिसका पूर्व के मुद्दे से अंत:संबंध नहीं होता था। सद्गोपाल का मानना है कि पाठ्यचर्या 2005 के निर्माण के पूर्व अगर पाठ्यचर्या 2000 के मूल्यांकन की रपट के साथ कुछ अवस्थिति पत्र भी जनसाधारण के बीच रखे जाते तो यह पूरी प्रक्रिया न केवल विवेकसम्मत होती बल्कि साथ-साथ पारदर्शी भी हो जाती (वही : 33)। सद्गोपाल का मानना है कि पाठ्यचर्या 2005 के जो आंतरिक अन्तर्विरोध, कमजोरियाँ तथा विरूपताएँ हैं वह वस्तुत: इस तरह के राष्ट्रीय स्तर के महत्वपूर्ण दस्तावेज के लेखन में वैज्ञानिक तरीका न अपनाने की वजह से हैं (वही : 34)। अपूर्वानन्द (2007) ने भी अपने लेख में कहा है, ''यह पुन: हिन्दुस्तान का दुर्भाग्य रहा है कि अगर आप एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तक निर्माण योजना देखना चाहें तो आपको कुछ पता नहीं चल पाएगा। एनसीईआरटी में चालीस साल से किताबें बन रही हैं लेकिन आप उनसे पूछिए की 1970 में जो फलां किताब बनी वह किस बहस से निकली? तो उनके पास इस बहस का कोई रिकॉर्ड नहीं है'' (अपूर्वानन्द : 11)।

पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक निर्माण से आमजनों की दूरी

यशपाल समिति ने यह स्पष्ट किया था कि पाठ्यचर्या एवं पाठ्यपुस्तक निर्माण के काम को अमूमन विशेषज्ञों का काम मान लिया गया है। परिणाम यह होता है कि पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक निर्माण के विभिन्न चरणों में अभिभावक, शिक्षक, विद्यार्थी, सांस्कृतिकर्मी, राजनीतिकर्मी, पर्यावरणकर्मी, महिला, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक विमर्शकार एवं आन्दोलनकर्ता जैसे लोगों की वांछित एवं वास्तविक भागीदारी नहीं हो पाती। 1988 की पाठ्यचर्या पर आधारित इतिहास की पाठ्यपुस्तकों, पाठ्यचर्या 2000 एवं उसके पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के साथ पाठ्यचर्या 2005 पर आधारित राजनीतिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों पर जरूर कुछ तिखी टिप्पणियाँ आई हैं पर उनकी प्रकृति अधिकांशतया अस्मितावादी राजनीति के दायरे में हैं। पाठ्यचर्या 2000, उसका पाठ्यक्रम और उस पर आधारित पाठ्यपुस्तकों पर की गई टिप्पणियाँ जरूर इस अस्मितावादी राजनीति के दायरे से बाहर हैं। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों के निर्माण से आमजनों की यह उदासीनता एक तरफा नहीं है। इस प्रक्रिया में ऐसी संरचनात्मक गुंजाइश एवं पहलकदमी नहीं है जिससे प्रेरित होकर आमजन पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों से जुड़ने के लिए प्रोत्साहित हों। इस विडम्बना पर सुब्रमह्मण्यम् की टिप्पणी है, ''स्थानीय समुदाय और शिक्षकों के प्रति एक अविश्वास भी था कि उन पर छोड़ देंगे तो बड़ा अनर्थ हो जाएगा। इस अनर्थ से बचने के लिए ऐसी पुस्तकें रची गईं जो विद्वान लेखकों को ठीक लगें, भले ही वह शिक्षकों व बच्चों की समझ से कोसों दूर हों।'' (सुब्रमह्मण्यम् 2012)

पाठ्यपुस्तकों में समाज के दलित-उत्पीड़ित जनों की दुनिया संसार का प्रतिनिधित्व न होने का एक संभावित कारण पाठ्यपुस्तक निर्माण प्रक्रिया का विशेषज्ञ केंद्रित होना हो सकता है। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक निर्माण का काम अक्सर विश्वविद्यालय के विशेषज्ञों द्वारा करवाया जाता है पर इसमें स्कूली अध्यापन से जुड़े शिक्षकों, अभिभावकों, विद्यार्थियों, पर्यावरण, विस्थापन, बहिष्करण, महिला विषमता के खिलाफ लड़ने वाले समूह, दलित एवं आदिवासी समाज के लिए संघर्ष करने वाले, विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों, धार्मिक अल्पसंख्यकों, भाषायी अल्पसंख्यकों के समर्थन में आवाज उठाने वाले बुद्धिजीवियों, अकादमिशियनों, सांस्कृतिकर्मियों, राजनीतिक कर्मियों की आवाजों का उचित प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता है। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक लेखन के विशेषज्ञ केन्द्रित होने पर 'शिक्षा बिना बोझ के' (यशपाल समिति, 1993) की टिप्पणी उद्धृत करना यहाँ समीचीन होगा, ''वास्तव में पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकें इस बात के प्रमाण हैं कि इनको तैयार करने वाले विशेषज्ञों को स्कूल तथा कक्षाओं की वास्तविकताओं की पर्याप्त जानकारी नहीं होती। ऐसी संभावना है कि ये विशेषज्ञ बच्चों तथा उनके द्वारा नई बातों को सीखने की प्रक्रिया से भी अनभिज्ञ होते हैं।'' (भारत सरकार 1993, पृ. 21) अतः उपरोक्त रोशनी में विकेंद्रित, आमजन के साथ बुद्धिजीवी, अकादमिशियन, सांस्कृतिक और राजनीतिक कर्मियों की भागीदारितापूर्ण पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक निर्माण की प्रक्रिया को अपनाए जाने की जरूरत है। इस संदर्भ में कुमार का आह्वान ध्यान खींचता है, कुमार कहते हैं ''शिक्षा की सड़न इतनी गंभीर हालत में पहुँच चुकी है कि उसका इलाज करने का जिम्मा अब केवल शिक्षाविदों और शिक्षा संस्थानों पर नहीं छोड़ा जा सकता। इसके लिए जरूरी है कि राजनैतिक और सामाजिक कामों में लगे लोग व संगठन शिक्षा में सक्रिय दिलचस्पी लें।

जो संगठन आदिवासियों, हरिजनों, भूमिहीन मजदूरों, औरतों और बच्चों के लिए काम कर रहे हैं, उन्हें अपने उद्देश्यों के अनुरूप शैक्षिक कार्यक्रम तथा पाठ्यक्रम बनाने चाहिए और इन कार्यक्रमों को चलाने के लिए सरकारी शिक्षा-संस्थाओं का उपयोग करना चाहिए। जरूरत इस बात की है कि बतौर नागरिक हम अपने बच्चों के शैक्षिक जीवन में दिलचस्पी लें।'' (कुमार, 1990 : पृ. 151)।

पाठ्यपुस्तकों का उद्देश्य विमुक्तकारी अथवा कुछ और

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में बतौर सूक्ति एक उद्धरण मोटे हरफ में दिया हुआ है, 'सा विद्या या विमुक्मतये''। नीति उद्धरण के खत्म होते ही उद्धरण का अर्थ करती है, ''शिक्षा वह है जो अज्ञान और दमन से मुक्ति दिलाती है।''

सवाल यह है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की सूक्ति उद्धरण, हकीकत में

तब्दील कैसे हो सकती है समाज के दलित-उत्पीड़ित जन के दुनिया-संसार, उनकी जीवन-दृष्टि, गीत-कथा, त्यौहार-उत्सव, उनके संघर्ष एवं उन पर किए गए जुल्म और उनके द्वारा किए गए प्रतिरोध, उनके नायक-खलनायक, उनके जीत-हार को स्कूली ज्ञान का हिस्सा बनाकर शिक्षा को उनके पक्ष में विमुक्तकारी बनाया जा सकता है या फिर उनका बहिष्करण करके। अध्याय चार का विश्लेषण बतलाता है कि पाठ्यपुस्तकें राजनैतिक पक्ष, विवादास्पद माने जाने वाले सामाजिक मुद्दे एवं दलित साहित्य पर बिल्कुल खामोश हैं। अपवादस्वरूप पाठ्यपुस्तक 2005 में एक अछूत मुद्दे पर है और पाठ्यपुस्तक 2000 में गद्य का एक पाठ दलित पर है। महिला मुद्दे पर भी पाठ्यपुस्तक 2000 एवं पाठ्यपुस्तक 2005 की स्थिति निराशाजनक है।

अध्याय चार का विश्लेषण बतलाता है कि पाठ्यपुस्तक 2000 एवं पाठ्यपुस्तक 2005 में उत्पीड़ित एवं विषमता के साथ-साथ अन्य मुद्दों पर महिलाओं द्वारा किए गए संघर्षों, देश-दुनिया को बनाने में दिए गए उनके योगदानों को शामिल करने वाले पाठ नहीं है। अल्पसंख्यक मुद्दे पर किसी पाठ्यपुस्तक में एक भी पाठ नहीं है और न ही विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि, हालात तथा उनके जद्दोजहद पर ही कोई पाठ है। अपवादस्वरूप रांघेय राघव की कहानी 'गूँगे' को छोड़कर। यह कहानी पाठ्यपुस्तक 2005 में शामिल है।

ऐसी स्थिति में इन पाठ्यपुस्तकों से क्या यह उम्मीद की जा सकती है कि वे शिक्षा को विमुक्तकारी बनाने में अपने तईं योगदान देंगी। आलोचनात्मक धारा के चिंतक गीरू (2014) का इस संबंध में कहना है कि निजी एवं सार्वजनिक स्तर के तकलीफ देह जीवन के दु:खों के दृष्टांत, उसके कारणों को समझे जाने की माँग करते हैं और साथ में करुणा की भी। उनका मानना है कि आलोचनात्मक शिक्षा के लिए इतिहास के साथ वर्तमान के शोषण की अवस्थाओं को रचना के स्तर पर लाना चाहिए। ऐसी शिक्षा के तहत तकलीफ के खौफनाक मंजर पर से पर्दा उठाया जाना चाहिए और इसके बरक्स संघर्ष और एकजुटता की कहानी लानी चाहिए। इस तरह के मुद्दों को शामिल करना 'विमुक्तकारी याद्दाश्त' का निर्माण करती हैं। गीरु के अनुसार इस तरह के विमुक्तकारी याद्दाश्त एक उद्घोषणा, एक उम्मीद होती है, जो याद दिलाती है कि लोग, केवल वर्चस्व की मशीनरी में पिसे जाने के लिये बाध्य नहीं हैं बल्कि ऐसे शोषण के खिलाफ लोग उठ खड़े भी होते हैं। गीरू के अनुसार इस तरह के प्रतिरोध उस ज्ञान से जुड़ जाती है जिसकी बदौलत उत्पीड़ित-दलित, शोषण-उत्पीड़न को 'ना' कह सकता है।

ध्यातव्य है कि भारत के दलितों के पास इस तरह के विमुक्तकारी याद्दाश्त का लम्बा एवं समृद्ध इतिहास है। उदाहरण के लिए महात्मा फूले द्वारा संचालित 'सत्यशोधक

समाज' (1873), डॉ. अम्बेडकर द्वारा चलाए गए प्रमुख आन्दोलन जैसे महाड़ सत्याग्रह (1927) तथा नासिक कालाराम मंदिर प्रवेश (तिवारी)। बालिका शिक्षा के लिए ज्योतिबा फूले द्वारा चलाया जाने वाला आन्दोलन। इसके साथ-साथ दलित एवं महिला साहित्य की लम्बी ऐतिहासिक परम्परा भी है। इस तरह की मुक्तिदायिनी याद्दाश्त को शामिल करके हम शिक्षा को विमुक्तकारी बनाने की ओर बढ़ सकते हैं।

संदर्भ

अपूर्वानन्द. (2007). *कौनसी किताबें पाठ्य हैं?* शिक्षा विमर्श, 9(1), 7-20।

एलैक्क्या, के. (1996). *व्हाई आई एम नॉट ए हिन्दू*. कलकत्ता : साम्या।

एनसीईआरटी. (2006) *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा.* नई दिल्ली : एनसीईआरटी।

एनसीईआरटी. (2006) *अनुसूचित जाति और जनजाति के बच्चों की समस्याएं-* राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र. नई दिल्ली : एनसीईआरटी।

कर्ण, च. (2012). *हिन्दी दलित कविता : कुछ बिन्दु*. रमणिका गुप्ता (सं.) *दलित चेतना : कविता में.* दिल्ली : ज्योतिलोक प्रकाशक।

कुमार, कृ. (1990), *'पाठ और पुस्तकें'* पृ. 81-91, राज, समाज और शिक्षा में, राजकमल, नई दिल्ली।

कुमार, कृ. (1998), *शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व.* दिल्ली : ग्रंथशिल्पी।

कोटनाला, अ. (2012). बातचीत डॉ. एन. सिंह से अश्वनी कोटनाला. रमणिका गुप्ता (सं.) *दलित चेतना* में, पृ. 37-42. दिल्ली : नवचेतन।

गीरू, हे. (2014). *संस्कृतिकर्मी और शिक्षा की राजनीति।* नई दिल्ली : ग्रंथशिल्पी।

गुप्ता, र. (2012). डॉ. माता प्रसाद से राजनारायण राय की बातचीत. रमणिका गुप्ता (सं.) *दलित चेतना* में, पृ. 43-47. दिल्ली : नवचेतन।

नैमिशराय, मो. दा. (2012). *हिन्दी में दलित साहित्य की उपस्थिति- एक पड़ताल.* रमणिका गुप्ता (सं) *दलित चेतना:* सोच में, पश[ठ 66-71. दिल्ली : ज्योतिलोक प्रकाशन।

बाला, द्ध. (1997). *माध्यमिक स्तरीय पाठ्यपुस्तकों में वंचितों की छवि।* एम.फिल. शोध प्रबंध (अप्रकाशित) शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

भारत सरकार. (1986). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति.* नई दिल्ली : मानव संसाधन विकास मंत्रालय।

भारत सरकार. (1990). *प्रबुद्ध एवं मानवीय समाज की ओर.* नई दिल्ली : मानव संसाधन विकास मंत्रालय।

भारत सरकार. (1993). *शिक्षा बिना बोझ के.* नई दिल्ली : मानव संसाधन विकास मंत्रालय।

भारत सरकार. (2009). *केब रिपोर्टस ऑफ दि सेन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड ऑफ एजूकेशन,* वॉल्यूम 1. नई दिल्ली : मानव संसाधन विकास मंत्रालय।

राय, रा. (2012). बातचीत डॉ. माताप्रसाद से राजनारायण राय. रमणिका गुप्ता (सं.) *दलित चेतना में,* पृ. 43–47. दिल्ली : नवचेतन।

सत्यप्रेमी, पु. (2012). भारतीय दलित साहित्य. रमणिका गुप्ता (सं.), *दलित चेतना में,* पृ. 88–98. दिल्ली : नवचेतन।

सद्गोपाल, ए. (2005). *'ऑन पेडागॉगी ऑफ राइटिंग ए नेशनल करिकुलम, फ्रेमवर्क : सम रिफ्लेक्शनस् फ्रॉम इनसाइडर'. डिबैटिंग एजुकेशन : ए क्रिटिकल एप्राइजल ऑफ नेशनल केरिकुलम फ्रेमवर्क 2005* (संपा) में. नई दिल्ली : सहमत.

सुब्रमह्ण्यम्, सी. एन. (2012). *सत्ता शिक्षा और पाठ्यचर्या.* शिक्षा विमर्श, 14(4–5), पृ. 54–59।

सिंह, ना. (2014). *दलित लेखन का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और वर्तमान संदर्भ.* रामकली सर्राफ (सं.) *दलित लेखन का अन्तर्विरोध,* पृ. 13–21. दिल्ली : शिल्पायन।

सिंह, न. (2012). *दलित कथा साहित्य और नारी.* रामकली सर्राफ (सं.) दलित लेखन का अन्तर्विरोध, पृ. 46–54. दिल्ली : शिल्पायन।

शुक्ल, अ. (2012). बातचीत डॉ. मैनेजर पाण्डेय से अनूप शुक्ल. रमणिका गुप्ता (सं.) *दलित चेतना में,* पृ. 17–36. दिल्ली : नवचेतन।

एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकें

साहित्य–मंजरी, भाग–1 (कक्षा–9 'अ')
संवाद, भाग–1 (कक्षा–9, द्वितीय भाषा) सितम्बर 2003
साहित्य–मंजरी, भाग–2 (कक्षा–10 'अ') फरवरी 2003
वासंती, भाग–1 (कक्षा–11, आधार) सितम्बर 2002
साहित्य–मंजूषा (कक्षा–11, ऐच्छिक) सितम्बर 2002
साहित्य–मंजूषा भाग–2 (कक्षा–12, ऐच्छिक)
वासंती, भाग–2 (कक्षा–12, आधार)
क्षितिज, भाग–1 जनवरी 2006 (कक्षा–9 'अ')
स्पर्श, भाग–1 (कक्षा–9, द्वितीय भाषा) जनवरी 2006
क्षितिज भाग–2 (कक्षा 10 'अ') जनवरी 2007
स्पर्श, भाग–2 (कक्षा–10, द्वितीय भाषा), जनवरी 2007
आरोह, भाग–1 (कक्षा–11, आधार) जनवरी 2006
अंतरा, भाग–1 (कक्षा–11, ऐच्छिक) मार्च 2006
अंतरा, भाग–2 (कक्षा–12, ऐच्छिक) जनवरी 2007
आरोह, भाग–2 (कक्षा–12, आधार) जनवरी 2007

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 2, अगस्त 2015

बिहार में गुणवत्तापूर्ण अध्यापक शिक्षा की योजना एवं प्रबंधन

कुमार संजीव*

सारांश

स्कूली शिक्षा और अध्यापक शिक्षा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों एक दूसरे से अंत:संबंधित हैं। कहा जाता है कि जब तक किसी राज्य के अध्यापक शिक्षा के ढांचे और गुणवत्ता दुरुस्त नहीं हो तो उक्त राज्य की स्कूली शिक्षा मजबूत नहीं हो सकती है। वैसे भी शिक्षा बच्चों की बुनियादी आवश्यकता बन गई है। 86वें संविधान संशोधन (2002) के जरिए शिक्षा का अधिकार एक मौलिक अधिकार बन गया है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009) पूरे देश में 1 अप्रैल 2010 से लागू है। इसके तहत 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को अनिवार्य और नि:शुल्क प्रारंभिक शिक्षा देने के लिए 2006 से 2014 के बीच 3.5 लाख प्रारंभिक शिक्षक नियुक्त किये गए लेकिन अब भी 20 प्रतिशत प्रारंभिक शिक्षक अप्रशिक्षित हैं। उन्हें सेवाकालीन प्रशिक्षण देने की जिम्मेदारी राज्य सरकार के कंधों पर है। इसी के मद्देनजर बिहार सरकार विश्व बैंक की 250 मिलियन अमेरिकी डालर की वित्तीय सहायता से राज्य के सरकारी अध्यापक शिक्षण संस्थानों को पुनर्जीवित कर उनमें गुणवत्ता विकसित करने का प्रयास कर रही है।

परिप्रेक्ष्य

शिक्षा का अधिकार कानून (आरटीई) लागू होने के बाद बड़ी संख्या में प्रशिक्षित शिक्षकों की जरुरत है। बच्चों को कक्षाओं में बांधे रखने के लिए टीचर्स की ट्रेनिंग बहुत जरुरी है। लेकिन बड़े पैमाने पर शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए राज्य में अध्यापक शिक्षण संस्थानों की भारी कमी है। केंद्र इसकी व्यवस्था करने को राजी नहीं है। वर्ष 2006 में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू) के साथ बिहार के 40 हजार टीचर्स को ट्रेनिंग देने

*प्राचार्य, डॉ. गौरी ब्रह्मानन्द टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

का समझौता हुआ था लेकिन वह आगे नहीं बढ़ सका। लिहाजा राज्य सरकार प्रशिक्षित शिक्षकों के कमी की भरपाई करने के लिये बिहार सरकार अपने अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के पुरातन मानदंडों में बदलाव लाने का भरसक प्रयास कर रही है। विश्व बैंक ने इसके लिए 2250 करोड़ रुपए की राशि देने की मंजूरी दे दी है जिसमें 650 करोड़ रुपए राज्य सरकार को अंशदान के रूप में वहन करना होगा। इस राशि की मदद से अगले चार सालों में 10 लाख प्रशिक्षित शिक्षकों को तैयार करने की सरकारी योजना है।

स्कूली शिक्षकों के नियुक्ति की विकेंद्रीकृत व्यवस्था

बिहार में शिक्षक छात्र अनुपात को 1:40 करने के लिए वर्ष 2006-07 में बिहार सरकार ने राज्य के प्राथमिक, मिडिल और माध्यमिक स्कूलों में 2.36 लाख शिक्षकों का नियोजन किया। इसके लिए विकेंद्रीकृत व्यवस्था अपनाई गई। बिहार राज्य पंचायती राज अधिनियम 2006 के तहत शिक्षा को पहली बार पंचायती राज संस्थाओं को सौंपा गया। प्राथमिक शिक्षकों के नियोजन के लिए 8545 ग्राम पंचायतों, मिडिल स्कूल के शिक्षकों के नियोजन के लिए 534 पंचायत समितियों और माध्यमिक शिक्षकों की नियुक्ति के लिए 38 जिला परिषदों और 272 नगर निकायों सहित कुल 9000 पंचायती राज संस्थानों को नियोजन इकाइयों की जिम्मेदारी सौंपी गयी। प्रथम चरण (2006-07) में 1.24 लाख प्रारंभिक शिक्षकों और 12 हजार माध्यमिक शिक्षकों को नियुक्त किया गया। 2006-15 के बीच 344114 प्रारम्भिक शिक्षक नियुक्त किये गये। जिसमे 76031 प्रारंभिक शिक्षक अप्रशिक्षित हैं। इनके सेवाकालीन प्रशिक्षण की जिम्मेदारी राज्य शैक्षिक एवं प्रशिक्षण परिषद (एस.सी.ई.आर.टी.), 24 जिला शिक्षक एवं प्रशिक्षण संस्थानों (डाईट), 36 प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों (पीटीईसी) एवं 6 कॉलेज आफ टीचर ऐजुकेशन (सीटीई) को दी गई है।

अध्यापक शिक्षा संस्थानों के लिए राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् का गुणवत्ता मानक

राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् ने अध्यापक शिक्षक संस्थानों की गुणवत्ता के आकलन के लिए कई मानक और पैमाने विकसित किये हैं। ये पैमाने हैं: पाठ्यचर्या आस्पेक्ट (50), शिक्षण-अधिगम एवं मूल्यांकन (450), शोध, कंसल्टेंसी एवं एक्सटेंशन (100), आधारभूत संरचना एवं अधिगम संसाधन (100), स्टुडेंट सपोर्ट एंड प्रोग्रेशन (100), गवर्नेंस एंड लीडरशिप (150), इन्नोवेटीव प्रैक्टिसेस (50)।

1 जुलाई 2016 से नैक ने ग्रेडिंग सिस्टम को पुर्नसंरचित कर दिया है। ग्रेडिंग की इस नई संरचना के तहत 1.51-2.00 सीजीपीए वाले संस्थानों को 'सी' ग्रेड, 2.01-

2.50 को 'बी' ग्रेड, 2.51–2.75 सीजीपीए को 'बी+', 2.76–3.00 सीजीपीए को 'बी++', 3.01–3.50 सीजीपीए को 'ए', 3.51–3.75 सीजीपीए को 'ए+' और 3.76–4.00 सीजीपीए को 'ए++' लेटर ग्रेड दिए जाने का प्रावधान है। जस्टिस टी एस आर सुब्रमणियम की रिपोर्ट (2016) में देश के अभी अध्यापक शिक्षा संस्थानों को नैक एक्रेडिटेशन अवश्य करवाने की अनुशंसा की गई।

बिहार में अध्यापक शिक्षा संस्थानों में गुणवत्ता की स्थिति

बिहार में बी.एड. एवं एम.एड. पाठ्यक्रम संचालित करने वाले सरकारी अध्यापक शिक्षण संस्थानों की कमी है। पटना विश्वविद्यालय की दो अंगीभूत इकाइयाँ : पटना ट्रेनिंग कॉलेज और वीमेंस ट्रेनिंग कॉलेज ही राज्य में काफी कम शुल्क पर बी.एड. पाठ्यक्रम चला रही हैं। उक्त दो कॉलेजों को छोड़ कर राज्य में बी.एड. और एम.एड. पाठ्यक्रम या तो सामान्य कॉलेज की अंगीभूत इकाइयों में स्व–वित्तपोषित कार्यक्रम के तहत संचालित किये जा रहे हैं या फिर निजी अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों में। वह भी काफी मंहगे।

निजी अध्यापक शिक्षण महाविद्यालयों में व्याख्याता नियुक्ति के समय न तो यूजीसी के मापदंडों का पालन किया जाता है और न तो एनसीटीई के मापदंडों का।

विश्वविद्यालयों की अंगीभूत इकाइयों में स्व वित्तपोषित कार्यक्रम के तहत खुले अध्यापक शिक्षा विभागों में भी अब तक व्याख्याताओं की नियुक्ति के लिए अब तक स्थायी पदों का सृजन नहीं किया जा सका है। अध्यापक शिक्षकों की अस्थायी नियुक्ति से अध्यापक शिक्षण की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (एनसीटीई) ने देश के सभी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों को राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद (नैक) से मूल्यांकन कराना अनिवार्य कर दिया है लेकिन बिहार की स्थिति संतोषजनक नहीं है। बिहार में कुल 218 प्राइवेट अध्यापक शिक्षक संस्थान हैं जिनमे से केवल दो संस्थानों को नैक से 'ए' ग्रेड मिला है। इंडिया टूडे ग्रुप ने वर्ष 2016 के सर्वेक्षण में बिहार के एक मात्र संत जेवियर्स कॉलेज ऑफ एजुकेशन को देश के टॉप 10 बी.एड. कॉलेज की सूची में स्थान दिया। इस प्राइवेट कॉलेज को नैक से 'ए' ग्रेड प्राप्त है। वहीं पटना विश्वविद्यालय के पटना वीमेंस कॉलेज में स्व–वित्तपोषित बी.एड. पाठ्यक्रम चला रहे शिक्षा विभाग को नैक से 'ए' ग्रेड मिला है। सर्वविदित है कि बिहार में गुणवत्ता वाले ट्रेनिंग कॉलेजों की कमी है। अधिकांश ट्रेनिंग कॉलेज नैक नहीं करवा सके हैं। वर्ष 1908 में स्थापित पटना विश्वविद्यालय के पटना ट्रेनिंग कॉलेज को 'बी' ग्रेड प्रदान किया गया है। लेकिन राज्य के प्रशिक्षणार्थी इसी ट्रेनिंग कॉलेज को पहले च्वाइस के रूप में चुनते हैं। सोशल ऑडिटिंग इसका सबसे बड़ा कारण

है। सोशल ऑडिटिंग के माध्यम से इस कॉलेज को राज्य का सर्वोच्च गुणवत्तापूर्ण कॉलेज का दर्जा हासिल है। नैक एक्रेडिटेशन से पहले राज्यपाल इस कॉलेज को राज्य के गुणवत्तापूर्ण इकलौते अध्यापक प्रशिक्षण संस्थान का अवार्ड दे चुके हैं। यह देश में सबसे कम नामांकन शुल्क लेने वाला इकलौता संस्थान है। जहाँ सरकार ने प्राइवेट बी.एड. कॉलेजों के लिए दो वर्षीय पाठ्यक्रम के लिए एक लाख रुपये नामांकन शुल्क तय कर रखा है वहीं पटना ट्रेनिंग कॉलेज मात्र दो हजार रुपये में नामांकन की सुविधा मुहैया कराता है। साथ ही यह कॉलेज कम संसाधन में सर्वाधिक गुणवत्ता मुहैया करवाता है।

अध्यापक शिक्षा विश्वविद्यालय का अभाव

जस्टिस टी एस आर सुब्रमणियम (2016) ने नई शिक्षा नीति के मसौदे पर अपनी कई अनुसंशाएं की हैं। उनकी रिपोर्ट में अध्यापक शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन लाने के लिए हर राज्य में कम से कम दो अध्यापक शिक्षा विश्वविद्यालय खोले जाने की सिफारिश की है ताकि अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हो सके। पश्चिम बंगाल सरकार इस दिशा में पहले ही कदम उठा चुकी है। पश्चिम बंगाल सरकार ने वर्ष 2014 में 'द वेस्ट बंगाल यूनिवर्सिटी ऑफ टीचर्स ट्रेनिंग एजुकेशन प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन' की स्थापना कर अध्यापक शिक्षा के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ चुकी है। इस यूनिवर्सिटी की स्थापना के बाद राज्य के सभी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज इस यूनिवर्सिटी से संबद्ध हो गये। बिहार में आर्यभट्ट नॉलेज यूनिवर्सिटी की स्थापना की गयी लेकिन सरकार ने इसे टेक्नीकल यूनिवर्सिटी बना दिया। यह विश्वविद्यालय अब मेडिकल, इंजिनीयरिंग के साथ-साथ टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेजों को भी संबद्धता प्रदान करती है। लेकिन बिहार में अध्यापक शिक्षा विश्वविद्यालय की स्थापना की कवायद अब तक नहीं की जा सकी है।

विकास आवश्यकता विश्लेषण (डीएनए)

बिहार सरकार सूबे की शिक्षक प्रशिक्षण व्यवस्था को विकास की पटरी पर लाने के लिए कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रही है। इसके लिए सरकार ने विश्व बैंक से लगभग सोलह सौ करोड़ रुपये बतौर ऋण की मांग की जिसमें करीब चौदह सौ करोड़ रुपये पर सहमति बन भी गयी है। लेकिन सूबे की शिक्षक प्रशिक्षण व्यवस्था को पटरी पर लाना आसन नहीं है। हाल ही में शिक्षा विभाग के शोध एवं प्रशिक्षण निदेशालय ने राज्य के 24 जिला शिक्षक एवं प्रशिक्षण संस्थानों (डाईट), 36 प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों (पीटीईसी) एवं 6 कॉलेज आफ टीचर ऐजुकेशन (सीटीई) में अध्यापक शिक्षकों के रिक्त पड़े पदों को वेतनमान पर नियुक्त स्कूली शिक्षकों की प्रतिनियुक्ति के जरिये भरने की कवायद शुरु की। इसके लिए चयनित 294 स्कूली शिक्षकों पर दो चरणों में की

गयी विकास आवश्यकता विश्लेषण (डीएनए) प्रक्रिया के दौर से गुजरे आधे शिक्षकों को प्रतिनियुक्ति हेतु अयोग्य करार दिया गया। एसूफा टेस्ट के जरिये उनके विकास आवश्यकता का विश्लेषण राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एससीईआरटी) और अजीम प्रेमजी फाउंडेशन ने संयुक्त रूप से किया था।

तालिका–1

	शिक्षकों की श्रेणी	**प्रतिशतता**
1.	निपुण	32%
2.	विकासशील	20%
3.	बेसलाईन	30%
4.	बेसलाईन से नीचे	20%

विश्लेषण के क्रम में 294 में से केवल 154 स्कूली शिक्षक ही सूबे के सरकारी ट्रेनिंग कालेजों में प्रतिनियुक्ति के लिए योग्य पाए गए। जो कुल चयनित शिक्षकों का लगभग पचास प्रतिशत है। यानि आधे शिक्षक प्रतिनियुक्ति हेतु अयोग्य पाए गए। छंटनी के पहले चक्र में दोनों चरण के डी.एन.ए एवं एसूफा टेस्ट से गुजरे 294 में से 124 वैसे शिक्षकों को छटनी कर दिया गया जिनकी बहाली सुप्रीम कोर्ट के दिशा–निर्देश पर हुई थी और उन्हें शिक्षण के तीन वर्षों का अनुभव नहीं था। दूसरे चक्र में 16 वैसे शिक्षकों की छटनी कर दी गयी जिनके पास एम.ए. इन एजुकेशन (लैटरल) डिग्री थी। दो चरणों में आहूत डीएनए–1 एवं डीएनए–2 परीक्षणों से गुजरे सभी शिक्षकों को चार श्रेणियों में बांटा गया। पहली श्रेणी में वैसे 'निपुण' शिक्षकों को रखा गया जिन्हें तत्काल शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में भेजा जा सके। ऐसे 52 फीसदी (कुल 154) शिक्षक चिन्हित किये गए। दूसरी श्रेणी में उन 'विकासशील' शिक्षकों को रखा गया जिन्हें अल्पकालीन शिक्षक प्रशिक्षण देने के बाद ही शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में तैनात किया जा सकता है। तीसरी 'बेसलाईन' श्रेणी में उन शिक्षकों को रखा गया जिन्हें दीर्घकालीन शिक्षक प्रशिक्षण देने के बाद ही शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में तैनात किया जा सकता है। इस श्रेणी के लगभग 30 फीसदी शिक्षक चिन्हित किये गए। जबकि चौथी श्रेणी में 'बेसलाईन के नीचे' वाले शिक्षकों को रखा गया जिन्हें शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में नहीं तैनात किया जा सकता। इस श्रेणी के कुल 20 फीसदी शिक्षक चिन्हित किये गए। अगर ये शिक्षक, प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रतिनियुक्त कर भी दिए जाएँ तो क्या होगा? क्या कल तक पहली से पंचवीं और छठी से आठवीं कक्षा के नौनिहालों को ककहरा सिखाने वाले ये शिक्षक डिप्लोमा इन एलिमेंटरी ऐजुकेशन पाठ्यक्रम में नामांकित प्रशिक्षु शिक्षकों को गुणवत्तापूर्ण प्रशिक्षण दे पाएंगे?

अध्यापक शिक्षा कैडर का गठन

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के तहत बिहार सहित पूरे देश में जिला शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान (डाईट) खोला गया। केंद्र सरकार के दिशा निर्देश के मुताबिक इन संस्थानों के विभिन्न पदों पर अध्यापक शिक्षा संवर्ग के व्याख्याताओं की नियुक्ति की जानी थी। लेकिन बिहार में अलग से ''अध्यापक शिक्षा कैडर'' नहीं होने से 1986 से अब तक इन डाईट्स में अध्यापक शिक्षा कैडर के व्याख्याताओं एवं इसके प्राचार्यों की एकबार भी सीधी नियुक्ति नहीं की जा सकी। इन पदों पर बिहार शिक्षा सेवा के अधिकारियों या अवर शिक्षा सेवा के अधिकारियों की नियुक्ति अथवा प्रतिनियुक्ति की जाती रही है। बिहार सरकार ने 28 साल बाद वर्ष 2014 में 'बिहार शिक्षा सेवा नियमावली–2014 बनाया इसके तहत ही सरकार ने अध्यापक शिक्षक कैडर के अधीन शोध एवं अध्यापन उपसंवर्ग बनाकर जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डाईट), प्रखंड शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (बाईट), कॉलेज आफ टीचर एजुकेशन (सीटीई) और राजकीय शिक्षक एवं प्रशिक्षण महाविद्यालयों (जीटीटीसी) में रिक्त पड़े व्याख्याता के कुल 1060 पदों पर नियुक्ति के लिए पदों का विषयवार आवंटन कर दिया है। ये सभी पद बिहार शिक्षा सेवा (शोध एवं अध्यापन संवर्ग) के मूल कोटि के पद हैं जिन पर नियुक्ति की जानी है। इन पदों के लिए वेतनमान भी तय कर दिए हैं। इनके लिए वेतन बैंड–2, ग्रेड पे 4800.00, चार वर्षों की सेवा के बाद वेतन बैंड–3, ग्रेड पे 5400 तय कर दिया गया है।

प्रखंड शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (बाईट) खोलने की कवायद

बिहार देश का पहला राज्य है जो प्रत्येक प्रखंड में प्रखंड शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (बाईट) खोलने की कवायद कर रहा है। ये बाईट बिहार के दरियापुर (पू. चंपारण), वाल्मीकि नगर (प. चंपारण), मुसापुर (कटिहार), माधोपट्टी (दरभंगा), किशनगंज, पूर्णिया, अररिया और सीतामढ़ी सरीखे चुनिंदे 8 प्रखंडों में खोले जा रहे हैं। इन नवसृजित 8 बाईट के लिए विषयवार 80 पदों का आवंटन किया गया है।

एनसीटीई के रेगुलेशन को फॉलो करना जरूरी

अध्यापक शिक्षक नियुक्ति संबंधी 'बिहार शिक्षा सेवा नियमावली–2014' में एन.सी.टी.ई. रेगुलेशन–2014 के उस प्रावधान का जिक्र तक नहीं किया गया है जिसमे एम.एड. के अलावा एम.ए. (एजुकेशन) और बी.एड. योग्यताधारी आवेदकों को भी नियुक्ति हेतु योग्य माना गया है।

कौन हैं सरकारी स्कूल के शिक्षक?

बिहार शिक्षा सेवा नियमावली–2014 के शोध एवं अध्यापन उपसंवर्ग के अधीन सरकारी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में सीमित प्रतियोगिता परीक्षा के जरिये होने वाली व्याख्याता की

नियुक्तियों में सरकारी स्कूल के वैसे शिक्षकों के लिए पचास फीसदी आरक्षण का प्रावधान है जिनके पास स्नातकोत्तर के साथ एम.एड. की डिग्री है। लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि कौन हैं सरकारी स्कूल के शिक्षक? 2005-06 से अब तक बिहार के स्कूलों में एकमुश्त राशि मानदेय पर शिक्षकों का नियोजन किया जाता रहा है। उनकी कभी नियुक्ति नहीं की गई। इस लिए पूरी स्कूली शिक्षा व्यवस्था 'नियुक्ति' और 'नियोजन' शब्द के भंवरजाल में उलझ कर रह गई। सरकार इन शिक्षकों को नियोजित शिक्षक मानती है। इससे इतर स्कूलों में शिक्षकों का एक ऐसा वर्ग भी है जो पूर्ण वेतनमान का लाभ ले रहें हैं। लिहाजा बिहार के स्कूलों में 'नियमित' और 'नियोजित' शिक्षकों के बीच वर्ग-विभेद और अकादमिक खाई पैदा हो गई। इसका असर पठन-पाठन पर भी पड़ा। लम्बे आन्दोलन के बाद सरकार ने नियोजित शिक्षकों को चतुर्थवर्गीय श्रेणी का वेतनमान तो दे दिया लेकिन उनके पदनाम से 'नियोजित' शब्द को नहीं हटाया। सरकार गाहे-बगाहे उन्हें पंचायती राज संस्थाओं द्वारा नियुक्त किये जाने का हवाला देती रही। लेकिन इन नियोजित शिक्षकों पर सरकार शिक्षा विभाग के अधिकारियों (जिला शिक्षा पदाधिकारी, जिला कार्यक्रम पदाधिकारी, प्रखंड शिक्षा पदाधिकारी) के साथ-साथ पंचायती राज संस्थाओं के प्रतिनिधियों और विद्यालय शिक्षा समितियों/विद्यालय प्रबंधन समितियों के जरिये त्रि-स्तरीय नियंत्रण रख रही है। हाल ही में शिक्षकों एवं स्कूलों की कार्य प्रणाली की निगरानी की जिम्मेदारी संबंधित इलाके की स्वयं सहायता समूह की महिलाओं को दिए जाने की वकालत भी सरकार ने कर दी। हालाँकि सरकार ने वर्ष 2016 में नियोजित कैडर वाले शिक्षकों को 'नियमित नियोजित शिक्षक' का एक नया दर्जा तो दे दिया लेकिन नियुक्ति के दस साल बाद भी उन्हें 'समान काम के लिए समान वेतन' का लाभ नहीं मिल सका। बहरहाल शोध प्रशिक्षण निदेशालय ने 2016 में अधिसूचना जारी की कि ''सरकारी स्कूलों में कार्यरत शिक्षक'' से तात्पर्य ''प्राथमिक/मध्य/उच्च/उच्चतर (10+2) स्तर के सरकारी विद्यालयों कार्यरत नियमित/नियमित नियोजित शिक्षक'' से है। निदेशालय ने शिक्षा मित्र एवं अन्य किसी प्रकार के शिक्षक को इस पद पर नियुक्ति हेतु वंचित कर दिया है।

गुणवत्तापूर्ण अध्यापक शिक्षा की आर्थिक चुनौतियां

वर्तमान में शिक्षक प्रशिक्षण के क्रियाकलापों को कुछ सीमा तक केंद्र प्रायोजित योजना एवं सर्व शिक्षा अभियान के माध्यम से सहायता मिलती है। किन्तु यह सहायता राज्य में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। इसलिए बिहार में शिक्षकों की सेवापूर्व और सेवाकालीन गुणात्मक प्रशिक्षण के लिए आवश्यक है कि राज्य के सभी प्रशिक्षण संस्थानों को सुदृढ़ किया जाए और सूचना तकनीक के प्रयोग द्वारा दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से भी प्रभावी प्रशिक्षण प्रदान किया जाए। राज्य की मृतप्राय अध्यापक

शिक्षण संस्थानों को पुनर्जीवित करने के लिए राज्य सरकार ने 357 मिलियन डालर (लगभग 2234 करोड़) की योजना बनाई है। जिसमे 'इन्हान्सिंग टीचर इफेक्टिवनेस इन बिहार' योजना के तहत वर्ष 2015–16 से 2019–20 की अवधि के लिए 70:30 के अनुपात में विश्व बैंक से 250 मिलियन डालर के रूप में एवं राज्य सरकार द्वारा 107 मिलियन डालर राज्य योजना के तहत उपलब्ध कराया जा रहा है। कुल योजना राशि में से 225 मिलियन डालर 'प्रोग्राम फॉर रिजल्ट' (परिणाम के लिए कार्यक्रम) एवं 25 मिलियन डालर तकनिकी सहायता के रूप में प्रदान की जा रही है। तकनिकी सहायता के अंतर्गत 'कार्यक्रम प्रबंधन इकाई' की स्थापना एवं तकनीकी सुदृढ़ता हेतु विशेषज्ञ की सेवाएं भी ली जा रही है। साथ ही प्रशिक्षण संस्थानों में आधारभूत संरचना का निर्माण कार्य एवं सूचना एवं संचार तकनीक संसाधनों का विकास बिहार राज्य शैक्षिक आधारभूत संरचना विकास निगम लिमिटेड द्वारा किया जा रहा है।

सरकार चाहती है कि इस राशि का उपयोग शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के आधारभूत संरचना विकास पर हो। शिक्षकों के वेतन एवं प्रशिक्षण पर एक पैसा खर्च न हों। यही वजह कि नई नियुक्ति की बजाय सरकार प्रतिनियुक्ति की वकालत कर रही है। आशंका व्यक्त की जा रही है कि सूबे के सरकारी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों का भी हश्र कहीं वही न हो जाये जैसे सर्वशिक्षा अभियान के पैसे से विकसित गुलाबी आधारभूत संरचनाओं से लैस स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता का हो रहा है।

सन्दर्भ

जस्टिस टी एस आर सुब्रमणियम की रिपोर्ट (2016)

बिहार पंचायत प्रारंभिक शिक्षक (नियोजन एवं सेवा शर्त) नियमावली (2006), *शिक्षा विभाग,* बिहार सरकार

बिहार पंचायत प्रारंभिक शिक्षक (नियोजन एवं सेवा शर्त) नियमावली (2012), *शिक्षा विभाग,* बिहार सरकार

बिहार शिक्षा सेवा नियमावली (2014), *शिक्षा विभाग,* बिहार सरकार

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (मान्यता मानदंड तथा क्रियाविधि) विनियम (2014), *मानव संसाधन विकास मंत्रालय,* भारत सरकार

राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् (2016)

शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009), *मानव संसाधन विकास मंत्रालय,* भारत सरकार

शिक्षा विभाग का प्रतिवेदन (2014–15), बिहार सरकार

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 2, अगस्त 2015

अध्यापक पात्रता परीक्षण एवं गुणवत्ता का आलोचनात्मक विमर्श

नीलम दलाल*

सारांश

भारत में अध्यापक पात्रता परीक्षण की प्रक्रिया को शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 लागू होने के साथ ही प्रारम्भ किया गया। जिसकी पृष्ठभूमि में यह रेखांकित किया गया कि यह परीक्षा, प्रारम्भिक स्तर की अध्यापकों की पेशेवर गुणवत्ता को भर्ती के समय से ही सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगी। गौरतलब है कि राज्य केवल शिक्षक गुणवत्ता हेतु 'शिक्षक–पात्रता परीक्षण' को ही एकमात्र महत्त्वपूर्ण आयाम के रूप में स्वीकार करता है जिससे पेशेगत गुणवत्ता के अन्य महत्त्वपूर्ण आयामों; शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम, संस्थागत संरचनाएँ, उपलब्ध संसाधन, पाठ्यचर्या इत्यादि; की अनदेखी हो रही है। प्रस्तुत लेख इस बात की विवेचना करता है कि शिक्षक गुणवत्ता संवर्धन तथा उसका मापन वस्तुतः एक ज्ञानमीमांसीय स्थिति है। पात्रता परीक्षण, भावी शिक्षकों की गुणवत्ता मापन का एक औजार तो हो सकता है किंतु यह शिक्षण कौशलों (जो कि गुणवत्ता के संकेतक हैं) के निर्माण एवं उनके संवर्धन को बढ़ा नहीं सकता। शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों के दौरान सैद्धांतिक तथा जमीनी तौर पर दिए जाने वाले रोजमर्रा के अनुभव ही गुणवत्तापूर्ण शिक्षक तैयार कर सकते हैं, अतः आज शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों तथा शिक्षा संस्थानों में सुधार समय की माँग है। यह लेख भारत में शिक्षक पात्रता परीक्षा के प्रतिरूप तथा उसके निहितार्थों की पड़ताल करने की दिशा में है।

अध्यापक पात्रता परीक्षा : ज्ञान–मीमांसीय संदर्भ

भारत में शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 लागू होने के साथ ही प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर मौजूदा व महत्वकांक्षी भावी शिक्षकों हेतु अध्यापक पात्रता परीक्षा

*शिक्षक शिक्षा विमर्श की अध्येयता और वर्तमान में माता सुन्दरी महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, में अध्यापन दिल्ली

उत्तीर्ण करना अनिवार्य हो गया है। इसके लागू होने के साथ ही यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि यह अनिवार्यता प्रारंभिक स्तर पर भर्ती के समय से ही शिक्षक गुणवत्ता में सुधार में मदद कर सकती है। चूँकि यह अधिकार 6–14 वर्ष आयु–समूह पर लागू होता है, अत: पात्रता परीक्षा इस समूह हेतु भर्ती किए जाने वाले अध्यापकों (कक्षा 1 से 8) हेतु अनिवार्य की गई है।

भारतीय शिक्षा के इतिहास में शिक्षा की गुणवत्ता सदैव ही नीतियों एवं समितियों के लिए चिंता का मुद्दा रही है। यह परिदृश्य पिछले कुछ वर्षों में भी नहीं बदला है। हाल ही में प्रारंभिक शिक्षा (विशेष रूप से सरकारी विद्यालयों के संदर्भ में) की खराब गुणवत्ता के चलते खूब आलोचना की जा रही है।

गैर सरकारी संगठन 'प्रथम' द्वारा किए गए राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण (ए.एस.ई.आर. 2005) के अनुसार 7–14 वर्ष के लगभग 60 प्रतिशत बच्चे कक्षा 2 के स्तर की कहानी नहीं पढ़ पाए। लगभग 41 प्रतिशत बच्चे बुनियादी स्तर की जमा व घटा की समस्याएं हल नहीं कर पाए। चौंकाने वाले निष्कर्ष यह हैं कि जिन राज्यों में उच्च नामांकन व साक्षरता स्तर है उनमें अधिगम स्तर उतना ही निम्न है (ए.एस.ई.आर. 2005)। इसी तरह के रुझान अग्रवाल (2001) ने अपने अध्ययन प्रबंधन के आधार पर तुलना में पाए, जो दर्शाते हैं कि प्राइवेट विद्यालयों की तुलना में सरकारी विद्यालयों के बच्चों का निष्पादन निम्न स्तरीय है।

इसी के साथ अन्य अध्ययन जो अध्यापकों की अनुपस्थिति (क्रैमर व अन्य, 2005) शिक्षक प्रेरणा तथा (रामचंद्रन 2005) तथा अनुदेशात्मक समय, कक्षा प्रक्रिया आदि के संदर्भ में हुए हैं, वे सभी अध्यापकों को 'विद्यालयी गुणवत्ता की गिरावट का मुख्य कारण' (बत्रा, 2014) ठहराते हैं। इस प्रकार वर्तमान में अध्यापकों की व्यावसायिक गुणवत्ता चिंता का विषय है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009, ने अध्यापकों को पेशेगत गुणवत्ता के लिए इन्हीं सब सूचकों को महत्त्वपूर्ण माना है। जिसमें सभी बच्चों हेतु सक्षम अध्यापक उपलब्ध करवाने/सुनिश्चित करने की बात की गई है। अध्यापक पात्रता परीक्षा के संदर्भ में यह तर्क दिया गया है कि यह परीक्षा ऐसे अध्यापकों का चयन करेगी जो अधिक सक्षम व निपुण होंगे तथा उन अध्यापकों को भर्ती होने से रोकेगी जो सक्षम व निपुण नहीं है। अत: सैद्धान्तिक तौर पर यह 'व्यावसायिक लाइसेंसिंग' की प्रक्रिया की तरह है, जिसमें कोई सरकारी एजेंसी व्यक्तियों की किसी पेशे या व्यवसाय में संलग्न होने हेतु प्रमाणपत्र देती है कि वे व्यवसाय विशेष में न्यूनतम सक्षमता व

निपुणता रखते हैं (मिशेल एवं अन्य, 2001)। इस प्रकार जो व्यक्ति पहले से ही प्राथमिक एवं माध्यमिक कक्षाओं में अध्यापन हेतु व्यावसायिक डिप्लोमा या डिग्री धारक हैं, अध्यापक पात्रता परीक्षा उनके लिए 'पेशे के प्रवेश द्वार' के रूप में काम करती है।

अध्यापक पात्रता परीक्षा को अध्यापक भर्ती में न्यूतनतम अर्हता में शामिल किए जाने के पीछे तर्क दिया गया है कि यह परीक्षा, राष्ट्रीय स्तर पर अध्यापक गुणवत्ता के मानदंडों को बेहतर बनाने व मानक निर्धारण में सहायक होगी। भर्ती के चरण पर सुधार लाने के अलावा यह भी आपेक्षित है कि यह शिक्षण संस्थानों तथा विद्यार्थियों में अपने निष्पादन मानकों को सुधारने हेतु अभिप्रेरित करेगी। साथ ही शिक्षा से जुड़े सभी हितधारकों को यह एक सकारात्मक संकेत देगी कि सरकार अध्यापक गुणवत्ता पर विशेष जोर दे रही है। इस प्रकार ये सभी प्रक्रियाएँ कालांतर में अध्यापक गुणवत्ता को सुधारेगी और इसके परिणामस्वरूप प्रारंभिक शिक्षा की गुणवत्ता में स्वयमेव सुधार होगा।

ध्यातव्य है कि राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एन.सी.टी.ई.) ने 23 अगस्त 2010 तथा 29 जुलाई 2011 को कक्षा 1 से कक्षा 8 तक के शिक्षकों की नियुक्ति हेतु न्यूनतम योग्यता 'शिक्षा का अधिकार, 2009' की धारा 23 की उपधारा (1) के अनुसार जारी की है। इस प्रकार किसी भी विद्यालय में प्रारंभिक शिक्षा में नियुक्ति हेतु अभ्यर्थी को अध्यापक पात्रता परीक्षा पास होना अनिवार्य है। यह परीक्षा राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद द्वारा जारी किए गए दिशा-निर्देशों के अनुरूप मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा आयोजित की जाएगी। प्रारंभ से ही मंत्रालय ने यह जिम्मेदारी केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद (सी.बी.एस.ई.) को सौंपी है। साथ ही विभिन्न राज्य अपने-अपने स्तर पर राज्य पात्रता परीक्षा का आयोजन भी कर सकते हैं, या वे केन्द्रीय स्तर की पात्रता परीक्षा के साथ सम्मिलित हो सकते हैं।

यह परीक्षा ज्ञान व कौशलों का मापन 'पेपर पैन्सिल' परीक्षण तरीके से करती है, जो मूल्यांकन की एक मानकीकृत पद्धति है। केन्द्रीय तथा राज्य स्तरीय सभी परीक्षाएँ बहुविकल्पीय एवं वस्तुपरक प्रश्नों पर आधारित होती हैं और जिसमें मुख्यत: बाल मनोविज्ञान, भाषा, गणित, पर्यावरण अध्ययन व शैक्षिक कौशल से संबंधित प्रश्न पूछे जाते हैं।

अध्यापक गुणवत्ता : नीतिगत विमर्श

जैसा कि हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम की धारा 23 की उपधारा (1) के प्रावधानों के अनुरूप अध्यापक पात्रता परीक्षा, शिक्षकों की नियुक्ति

हेतु अनिवार्य कर दी गई है। हालांकि इसके अगले ही अनुभाग में यह बात भी कही गई है कि जिन राज्यों में उपधारा (1) के अधीन यथा अधिकथित न्यूनतम अर्हताएँ रखने वाले अध्यापक पर्याप्त संख्या में नहीं हैं, वहाँ केन्द्र सरकार पाँच साल के लिए छूट भी दे सकती है। साथ ही अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (छ) तथा उपधारा (झ) सरकार पर 'अच्छी गुणवत्ता की प्राथमिक शिक्षा सुनिश्चित' करने तथा अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध करवाने की अनिवार्यता निश्चित करती है।

इन उपरोक्त खण्डों में यह निहित है कि अध्यापक शिक्षा के संदर्भ में सरकार की महत्त्वपूर्ण एवं बड़ी जिम्मेदारी है। चूंकि 'शिक्षा का अधिकार' अब मूलभूत अधिकार बन गया है अत: यह जिम्मेदारी और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। उपरोक्त खण्ड इस बात की ओर भी इशारा करते हैं कि अध्यापक गुणवत्ता को वृहद दृष्टिकोण; जिसमें शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम, निपुण शिक्षक प्रशिक्षक तथा शिक्षक शिक्षा हेतु गुणवत्तापूर्ण संस्थान उपलब्ध करवाने के जिम्मेदारी शामिल है; से समझने की आवश्यकता है। किन्तु केवल अध्यापक पात्रता परीक्षा पर जोर देकर राज्य इस जिम्मेदारी के महत्वपूर्ण हिस्सों को छोड़कर केवल एक छोटे हिस्से पर ही ध्यान केन्द्रण कर रहा है।

बत्रा (2014) के अनुसार 'नीति निर्माता अक्सर अध्यापक गुणवत्ता विकास एवं संवर्द्धन की बात करते हैं, किन्तु नीति प्रवर्तन, अक्सर ही अध्यापक गुणवत्ता के बजाय अध्यापक 'जवाबदेही' पर केन्द्रित हो जाता है, जिसमें अध्यापकों की शैक्षिक क्षमताओं के विकास पर कोई सुझाव या बात नहीं होती'। इस प्रकार इन अवसरों की चूक, अध्यापकों की गुणवत्ता में गिरावट का रास्ता और खोल देती हैं। इस प्रकार अध्यापकों की व्यवसायगत गुणवत्ता एवं उसका संवर्धन एक नीतिगत विमर्श के साथ-साथ राज्य की सक्रियता, संवेदनशीलता एवं जवाबदेही की माँग करता है।

अध्यापक गुणवत्ता : सुधार व गुणवत्ता प्रक्रिया के अवसर

गुणवत्ता विमर्श इस बात को रेखांकित करता है कि गुणवत्ता में अपने आप से सुधार नहीं होता बल्कि गुणवत्ता संवर्धन के लिए अन्तर्निहित घटक एवं प्रक्रियाएँ महत्त्वपूर्ण होती हैं। किसी भी व्यावसायिक क्षेत्र में गुणवत्ता संबंधी सुधार के प्राय: निम्न तीन स्थान/तरीके होते हैं: प्रशिक्षण कार्यक्रमों में प्रत्यायन, राज्य द्वारा व्यावसायिकों का प्रमाणीकरण, राज्य द्वारा आवेदकों का पूर्वसेवा प्रमाणीकरण-पात्रता परीक्षण (मिशेल एवं अन्य, 2001)। अध्यापकों में गुणवत्ता सुधार हेतु शिक्षण प्रशिक्षण के बुनियादी ढाँचे में परिवर्तन, शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों के पाठ्यक्रम व संस्थानों की गुणवत्ता में सुधार, विद्यालयों में सुविधाओं

में सुधार, शिक्षकों को अभिप्रेरित करने तथा अध्यापन विधियों में बदलाव (जो बच्चों को आकर्षक लगें) की आवश्यकता होती है (अग्रवाल 2001)। अन्य व्यवसायों के समानान्तर शिक्षक शिक्षा व्यवसाय में भी अध्यापकों की गुणवत्ता हेतु महत्वपूर्ण स्थान चिन्हित किए गए हैं– जो निम्न प्रकार है :

1. **अध्यापक प्रशिक्षण/सेवापूर्व शिक्षा कार्यक्रम :** इसके अन्तर्गत शिक्षा संबंधी बुनियादी ज्ञान के विस्तृत क्षेत्र सम्मिलित किए जाते हैं। पूर्व सेवा शिक्षा कार्यक्रमों में यह सुनिश्चित किया जाता है कि प्रशिक्षु अध्यापकों को उन आधारभूत मुद्दों से अवगत करवाया जाए, जो उन्हें आगे अपने व्यावसायिक जीवन में शैक्षिक निर्णय लेने में सहायक होंगें। प्रशिक्षक की देखरेख में पूर्व सेवा कार्यक्रम में 'छात्र–शिक्षकों' को मौका दिया जाता है कि वे शिक्षण के कठिन कौशल विकसित करने हेतु अपने सैद्धान्तिक ज्ञान का प्रयोग समस्या विशेष पर कर पाएँ। इस प्रक्रिया के दौरान वे शैक्षिक निर्णयन, किसी विषय से संबंधित दो महत्वपूर्ण उपागमों में से किसी एक को चयन करने तथा उन व्यावहारिक कौशलों का जिन्हें वे आगे प्रयोग करेंगे जैसे विषयों, पर विचार–विमर्श व शैक्षिक कौशलों का विकास करते हैं।
2. **अध्यापक पात्रता परीक्षण :** अध्यापकों की गुणवत्ता में सुधार लाने की प्रक्रिया में अध्यापक पात्रता परीक्षा एक अन्य तरीका हो सकता है। ये परीक्षण प्राय: ऐसे ज्ञान व कौशलों पर जोर देते हैं जो किसी भी व्यवसाय में प्रवेश करने से पहले प्रभावी प्रदर्शन हेतु आपेक्षित होते हैं (स्टेकर एवं इम्पारा, 1995 मिशेल व अन्य 2001 से उद्धृत)।
3. **अनुभव व आनुभाविक पुन:दृष्टि :** इसके अन्तर्गत सेवाकालीन शिक्षा कार्यक्रम आते हैं तथा इन कार्यक्रमों में शिक्षा के क्षेत्र में नए सैद्धान्तिक ज्ञान को सेवाकालीन शिक्षकों तक पहुँचाया जाता है, इस प्रकार वे अपने अनुभवों व इन नये ज्ञान के आयामों में सामंजस्यता स्थापित करते हुए शिक्षण कार्य को गुणवत्तापूर्ण बनाने की ओर नवाचारी कदम उठा सकते हैं।

उपरोक्त विवेचन इस ओर ध्यानाकर्षण करते है कि शिक्षक गुणवत्ता के संदर्भ में पूर्व सेवा, सेवाकालीन अध्यापक शिक्षा व पात्रता परीक्षा महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस लेख के अगले भाग में इस बात पर चर्चा की गई है कि 'शिक्षा का अधिकार' अधिनियम लागू होने के पश्चात् 'अध्यापक गुणवत्ता' के मुद्दे पर भारतीय 'राज्य' की क्या प्रतिक्रिया रही है।

गुणवत्ता मापन व गुणवत्ता संवर्धन : परीक्षण व अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम

शिक्षकों के पास विषय और शिक्षणशास्त्र की बेहतर व गहन समझ होनी चाहिए, उनके पास आलोचनात्मक चिंतन व विश्लेषण कौशल होने चाहिए, तभी वे बच्चों को अधिगम प्रक्रिया में बेहतर तरीके से संलग्न कर पाएँगे (बत्रा : 2009)। अध्यापक शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप (2010) के अनुसार शिक्षकों को कक्षायी वातावरण व वास्तविकताओं का ज्ञान होना चाहिए। साथ ही उनमें विविधताओं की समझ व सम्मान की भावना भी होनी चाहिए। अध्यापकों को पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक व शिक्षण-अधिगम सामग्री विकसित करने की प्रक्रिया में भागीदारी लेनी चाहिए (डायर व अन्य, 2002) अध्यापकों को सामाजिक बदलाव की एक सक्रिय एजेंसी के तौर पर कार्य करना चाहिए। (राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2010)

मूल्यांकन व आकलन प्रक्रिया का समसामयिक विमर्श मूल्यांकन व आकलन को सतत् व व्यापक प्रक्रिया के रूप मे देखने के साथ ही इस बात की भी माँग करता है कि यह शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का अभिन्न व महत्वपूर्ण अंग है। अत: अध्यापकों में उन सब कौशलों का होना जरूरी है जिनसे वे बच्चों का विभिन्न क्षेत्रों (जैसे बौद्धिक, शारीरिक, भावनात्मक, सामाजिक इत्यादि) में आकलन कर पाएँ। किंतु एक ओर जहां वर्तमान में छात्रों हेतु अधिक उदार व छात्र-अनुकूल शिक्षण व मूल्यांकन विधियों को अपनाने की बात कही जाती है, वहीं दूसरी ओर शिक्षकों की गुणवत्ता के मानकों को निम्नस्तरीय बनाया जा रहा है।

उपरोक्त चर्चा इस बात से अवगत कराती है कि शिक्षकों को सक्षम, रचनात्मक व परिवर्तन का सक्रिय एजेंट होना चाहिए किन्तु शिक्षकों की स्थिति एवं स्तर बहुत ही निराशाजनक है। शैक्षिक शोध परिणाम शिक्षकों को कम प्रशिक्षित, अयोग्य, कम वेतन पाने वाले व शिक्षायी व्यवस्था में अप्रेरित, निराश व यांत्रिक भूमिका में दर्शाते हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि वास्तविक कौशलों तथा शैक्षिक सुधार हेतु आपेक्षित कौशलों (जो गुणवत्ता हेतु आवश्यक हैं) में काफी अंतर है। शिक्षा में लगातार नए कार्यक्रम (जैसे– हाल ही में शुरु हुआ सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन) शुरु किए जाते हैं किन्तु शिक्षकों को इन्हें जमीनी वास्तविकता पर लागू करने के कौशलों से लैस नहीं किया जाता।

अध्यापकों के कौशलों की यथास्थिति व उनसे आपेक्षित कौशलों के बीच का विरोधाभास इस प्रश्न को पैदा करता है कि भारतीय 'राज्य', शिक्षक पात्रता परीक्षा को

अपनाकर अध्यापक गुणवत्ता मापन को चुन रहा है या गुणवत्ता संवर्धन हेतु कदम उठा रहा है? गुणवत्ता मापन का केन्द्रण केवल इस बात पर होता है कि फिलहाल गुणवत्ता स्तर क्या है, किन्तु यह गुणवत्ता बढ़ाने की प्रक्रिया या सुधार हेतु कोई उपाय नहीं सुझा पाता है। जबकि दूसरी ओर गुणवत्ता विकास एवं संवर्धन की प्रक्रिया वृहत दृष्टिकोण हैं और उसमें परिस्थिति को समझना उसके कारकों को पहचानना व सुधार हेतु सुझाव देना शामिल होता है। हालांकि गुणवत्ता विकास एवं संवर्धन की प्रक्रिया में मापन की अपेक्षा अधिक समय तथा धन लगता है। शिक्षक पात्रता परीक्षा मापन का एक तरीका है, और 'राज्य' ने अध्यापक शिक्षा तथा मापन दोनों तरीकों को अपनाने की बजाय केवल पात्रता परीक्षा को चुना है। राज्य के लिए पात्रता परीक्षा को चुनना आर्थिक रूप से बेहतर तो है किन्तु यह एक प्रकार से गुणवत्ता सुधारों हेतु उठाए जाने वाले कदमों में एक प्रकार का समझौता भी है। 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009' के तहत राज्य को अध्यापक गुणवत्ता के संदर्भ में आपेक्षित वृहत्त भूमिका का एक छोटा हिस्सा ही राज्य द्वारा पूरा करने की मंशा नजर आती है। क्योंकि राज्य भर्ती के समय अध्यापकों की गुणवत्ता मापन की ओर तो ध्यान दे रहा है किन्तु गुणवत्ता संवर्धन एवं स्थायित्व हेतु अध्यापक शिक्षा के समय किए जाने वाले उन प्रयासों की अनदेखी कर रहा है जो गुणवत्ता विकास में महत्वपूर्ण हो सकते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि अध्यापक पात्रता परीक्षा भावी अध्यापकों की भर्ती के समय गुणवत्ता मापन का औजार भले ही होगा, किन्तु यह उन कौशलों (जो अध्यापकों की गुणवत्ता की ओर इशारा करते हैं) को बढ़ाने में मददगार साबित नहीं होगा।

विभिन्न शोध इस बात को मानते हैं कि गुणवत्ता के संदर्भ में अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम महत्वपूर्ण होते हैं (डायर व अन्य, 2002), अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों में अनुभवी अध्यापकों की देखरेख में समस्या के विभिन्न घटकों पर ध्यान देने, निर्णय लेने व्यावहारिक कौशल विकसित व उन्हें लागू करने के मौके मिलते हैं। अध्यापक गुणवत्ता के संदर्भ में ये मौके गुणवत्ता विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (मिशेल एवं अन्य, 2001)। यूनस्कों की एक रिपोर्ट के अनुसार व्यावसायिक प्रशिक्षण में शामिल गतिविधियों का अध्यापकों के विश्वासों, कार्य के तरीकों, बच्चों के सीखने और शैक्षिक सुधारों को लागू करने पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है (कोहन व हिल, 2000 यूनेस्को रिपोर्ट, 2005 से उद्धृत)। इस प्रकार 'अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम' के दौरान की जाने वाली सैद्धान्तिक व व्यावहारिक गतिविधियाँ एक अध्यापक की क्षमताओं व कौशलों को विकसित होने व उन्हें परिष्कृत होने के मौके प्रदान करती हैं। ये कौशल व क्षमताएँ अध्यापक गुणवत्ता

के संकेतक होते हैं। भारत में 2010 में पूर्व सेवा अध्यापक शिक्षा पर हुई अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में भी इस बात पर जोर दिया गया कि भारत में प्रारंभिक शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने में पूर्व सेवा अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता पर ध्यान देना एक निर्णायक कदम होगा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शैक्षिक गुणवत्ता हेतु अध्यापक शिक्षा के संदर्भ में गंभीरता से सोचने व हस्तक्षेप किए जाने की जरुरत है। इसके लिए पात्रता परीक्षा लेना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों, संस्थानों की आपूर्ति व संस्थानिक क्षमताओं को विकसित करने जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर ध्यान देना आवश्यक है। अत: आज समय की माँग संस्थानिक व अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों में सुधार की है ताकि उनमें भावी अध्यापकों में गुणवत्ता विकसित करने की संस्कृति, प्रथाओं व क्षमताओं का चलन बढ़े। इसके पश्चात् पात्रता परीक्षा द्वारा अध्यापकों के ज्ञान व कौशलों का मापन किया जा सकता है।

अध्यापक पात्रता परीक्षा : आनुभाविक विमर्श

शिक्षा की गुणवत्ता, अध्यापकों की गुणवत्ता (जो व्यावसायिक तैयारी व अभिवृत्ति से निर्धारित होती है) पर आधारित होती है। उपरोक्त चर्चा से यह बात स्पष्ट हो गई है कि 'शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009' में अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता एक अभिन्न अंग है, और सबके लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु राज्य की जिम्मेदारी अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में सुधार व निवेश करने के संदर्भ में है। अध्यापक पात्रता परीक्षा लागू करने के साथ ही यह अपेक्षा थी कि यह परीक्षा अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षक शिक्षा संस्थानों को गुणवत्ता को सुधारने के लिए तैयार करेगी अन्यथा ऐसे संस्थान आवेदकों के बीच अलोकप्रिय हो जाएंगे और अंतत: बंद होने की कगार पर आ जाएंगे। इन संस्थानों से आपेक्षित था कि ये पात्रता परीक्षा में अपने शिक्षार्थियों को सफल बनाने हेतु स्वयं संस्थानिक गुणवत्ता बढ़ाएँगे। किन्तु आज 5 साल बाद तक भी ऐसे कोई संकेतक नजर नहीं आए हैं कि पात्रता परीक्षा ने अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों या संस्थानों द्वारा अपनी गुणवत्ता को बढ़ाने या सुधारने हेतु कोई कदम उठाने के लिए अभिप्रेरित किया हो। बल्कि स्पष्ट तौर पर अध्यापक पात्रता परीक्षा ने शिक्षा संस्थानों की गुणवत्ता सुधार की बजाय निजी कोचिंग संस्थानों की संख्या में कुकुरमुत्तों की तरह इजाफा कर दिया है, और ये संस्थान उम्मीदवारों से मोटी फीस लेते हैं और उम्मीदवारों को आशा दिलाते हैं कि वे उनके बताए तरीकों से अध्यापक पात्रता परीक्षा को *'क्रैक' (Crack)* कर सकते हैं। चिंताजनक बात यह है कि अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के पाठ्यक्रमों, संस्थानों व उनकी आधारभूत संरचनाओं में कोई परिवर्तन नहीं आया है।

आज जब भारत में लगभग 90 प्रतिशत अध्यापक शिक्षा संस्थान निजी हाथों में जा चुके हैं, तो 'राज्य' की भूमिका इन संस्थानों में गुणवत्ता सुधार हेतु प्रयास करने के संदर्भ में और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। यदि शिक्षा कार्यक्रम व संस्थान गुणवत्तापूर्ण होंगे तो भावी अध्यापकों को निजी कोचिंग की जरुरत नहीं होगी और न ही वे सिर्फ 'परीक्षा पास' करने की अभिवृत्ति रखेंगे बल्कि वे उन कौशलों एवं ज्ञान को विकसित करेंगे जो शिक्षायी गुणवत्ता को बढ़ावा देंगे। इस संदर्भ में सिद्दिकी (2012) का मत है कि पात्रता परीक्षा पास करने वाले अभ्यर्थियों व उनके अध्यापक शिक्षा (कार्यक्रमों) संस्थानों को सार्वजनिक किया जाना चाहिए व संस्थानों की मान्यता व श्रेणीयन में इस परिणाम को शामिल किया जाए तो पात्रता परीक्षा लागू करने का उद्देश्य व संस्थाई गुणवत्ता संवर्धन को प्राप्त किया जा सकता है।

यदि हम केन्द्रीय अध्यापक पात्रता परीक्षा के परिणामों का अध्ययन करें तो चौंकाने वाले आँकड़े हमारे सामने होंगे। सन् 2011 से अब तक राष्ट्रीय स्तर पर पास प्रतिशत 10% से भी कम रहा है (केवल 2013 इसका प्रतिवाद रहा है जब पास प्रतिशत 11% रहा है)। दिसम्बर 2012 व दिसम्बर 2014 में क्रमशः 1% व 2% उम्मीदवार ही पात्रता परीक्षा पास कर पाए। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि वे अभ्यर्थी जो अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों को पास करने की डिग्री या डिप्लोमा प्राप्त कर चुके हैं, किन्तु पात्रता परीक्षा (जो 'पेपर–पैन्सिल' परीक्षण प्रणाली से कुछ तथ्यात्मक ज्ञान का परीक्षण ही कर पाता है) को पास करने में असफल हो रहे हैं। यह स्थिति सीधे तौर पर अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों व संस्थानों के प्रदर्शन व उनकी गुणवत्ता के न्यून स्तर को दर्शाती है। यह तर्क दिया जा सकता है कि यह पात्रता परीक्षा बहुत कठिन होती है किन्तु इतना कम पास प्रतिशत स्पष्ट तौर पर यह दर्शाता है कि अधिकतर अभ्यर्थियों में बाल मनोविज्ञान, शैक्षिक कौशलों व भाषा के बुनियादी ज्ञान का अभाव है। इस ज्ञान के विकास की जिम्मेदारी शैक्षिक कार्यक्रमों व संस्थानों की है, जो इन्हें व्यावसायिक डिग्री या डिप्लोमा दे रहे हैं।

प्रारंभिक शिक्षा में स्नातक स्तरीय, एक चार वर्षीय प्रारंभिक अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम को अध्यापक शिक्षा में नवाचारी कार्यक्रम माना जा रहा है। (पाठ्यचर्या नवीनीकरण के लिए अध्यापक शिक्षा पर राष्ट्रीय फोकस समूह, 2005)। इसके वृहत सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम व व्यापक शैक्षिक जमीनी अनुभव इसे एक बेहतरीन गुणवत्तापूर्ण अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम बनाते हैं। चार वर्षीय पाठ्यक्रम के दौरान भावी शिक्षकों को विभिन्न शैक्षिक विषयों अभ्यासक्रमों, शिल्प कार्यो, कक्षा प्रबंधन, मूल्यांकन, विभिन्न मुद्दों पर चिंतन व वार्तालाप के विभिन्न अवसर अध्यापक प्रशिक्षार्थियों में व्यावसायिक

कौशलों का विकास करते हैं। 304 स्नातकों से इकट्ठे किए गए ऑनलाइन आँकड़ों से पता चला है कि इस कार्यक्रम को पूरा करने के पश्चात् 90% छात्राएँ शिक्षक-पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण कर चुकी थी (प्रारंभिक शिक्षा रीव्यू रिपोर्ट, 2013)। इसकी तर्ज पर अन्य शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों, संस्थानों तथा पात्रता परीक्षा परिणामों का विश्लेषण करके शिक्षण कार्यक्रमों व शिक्षा संस्थानों की गुणवत्ता के संदर्भ में संबंध स्थापित किया जा सकता है। जिसे अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों तथा संस्थानों के प्रत्यायन व उनमें गुणवत्ता सुधार हेतु आधार बनाया जा सकता है। यदि अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम व संस्थान अच्छी गुणवत्ता वाले होंगे तो उनसे शिक्षा प्राप्त अध्यापक भी कुशल व गुणवत्तापूर्ण होंगे। अत: पात्रता परीक्षा में उनके उत्तीर्ण होने की संभावना भी बढ़ जाएगी। इस प्रकार प्रारंभिक स्तर पर अधिक संख्या में गुणवत्तापूर्ण अध्यापक उपलब्ध होंगे और शिक्षा के अधिकार का सपना साकार हो पाएगा।

लगातार अभ्यर्थियों की बढ़ती असफलता की दर के चलते ऐसे कयास भी लगाए जा रहे हैं कि कुछ राज्य पात्रता-परीक्षा के स्तर को थोड़ा नीचे करके परीक्षा को थोड़ा सरल बनाने की योजना भी बना रहे हैं। (टाइम्स ऑफ इंडिया, 19 नवम्बर 2013)। किन्तु यह प्रयास इन परीक्षाओं की गुणवत्ता सुधार में भूमिका को कमतर ही करेंगे। यह वांछनीय है कि भर्ती के स्तर पर गुणवत्ता मापन के तरीकों की गुणवत्ता स्तर पर कोई समझौता न किया जाए। आवश्यक है कि प्रारंभिक स्तर पर अध्यापकों की भर्ती के समय अध्यापकों में शिक्षण चुनौतियों का सामना करने की क्षमता व प्रभावी शिक्षण के कौशल सुनिश्चित किए जाएँ।

निहितार्थ : संदर्भगत चुनौतियाँ

वस्तुत: यह लेख 'अध्यापक गुणवत्ता' के विचार, शिक्षक गुणवत्ता हेतु तैयारी व अध्यापकों के चयन के बीच की असंगतता की ओर इशारा करता है। 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009' राज्य पर अध्यापक गुणवत्ता के संदर्भ में मात्र गुणवत्ता 'मापन' से कहीं अधिक वृहत्त जिम्मेदारी डालता है, अत: राज्य को उस संदर्भ में ही कदम उठाने व निवेश करने की आवश्यकता है। अध्यापक गुणवत्ता हेतु यह आवश्यक है कि शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों, बेहतर संरचना व बेहतर अध्यापक शिक्षा संस्थान व उनमें उम्दा अध्यापक भर्ती किए जाएँ। शोध यह भी दर्शाते हैं कि मात्र पात्रता परीक्षा शिक्षकों की गुणवत्ता में सुधार नहीं ला सकते (एगरिस्ट, जे.डी. व गुरयन, जे 2004 पोडगुर्सस्की, 2005 से उद्धृत)। ऐसा भी संभव है कि अगर ये परीक्षा महंगी होती हैं तो ये परीक्षा कई बार योग्य अभ्यार्थियों को शिक्षण से रोक भी सकती है। इन पात्रता-परीक्षणों

ने राज्य का खर्चा बढ़ाने की बजाय आवेदकों पर खर्च का भार बढ़ा दिया है जो उन्हें कोचिंग लेने, फार्म की फीस भरने इत्यादि के रूप में वहन करना पड़ता है। अत: यह भी संभावना है कि इस तरह की प्रणाली में कई अभ्यर्थियों के लिए मुश्किलें और बढ़ जाती है। भारतीय संदर्भ में इसका महिलाओं, ग्रामीण क्षेत्रों के अभ्यार्थियों, दलित एवं आदिवासी अभ्यार्थियों इत्यादि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

इस आयाम के अलावा एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम यह भी है कि यह ध्यान रखा जाए कि इस तरह की पात्रता-परीक्षा विभिन्न शिक्षा कार्यक्रमों व संस्थानों को वैधता प्रदान करने का यंत्र न बन जाए। आज हमारे देश में बहुत से अध्यापक-शिक्षा संस्थान ऐसे है जो न्यूनतम मानकों की अनदेखी करते हैं। यदि पात्रता परीक्षा में प्रदर्शन और शिक्षा संस्थानों के प्रत्यायन को जोड़ दिया जाए तो ऐसे संस्थानों में कमी आएगी तथा ये संस्थान छात्र-अध्यापकों के प्रति अधिक उत्तरदायी होंगे व गुणवत्ता सुधार के कदम उठायेंगे। इसके अलावा पात्रता-परीक्षा के स्तर को गिराए जाने जैसे कदमों की आलोचना की जानी चाहिए, न कि उन्हें समाधान की तरह देखा जाना चाहिए। क्योंकि यह गुणवत्ता सुधार के मौजूदा तरीकों को नुकसान पहुँचाने का कार्य करेंगे। राज्य को चाहिए कि वह सेवापूर्व व सेवाकालीन अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के पाठ्यक्रम व संस्थानों की गुणवत्ता पर ध्यान दें ताकि गुणवत्तापूर्ण अध्यापक उपलब्ध हों और शिक्षायी गुणवत्ता बढ़ाने में वे अपना सकारात्मक सहयोग दे सकें।

संदर्भ

अग्रवाल, वाई. (2001) *क्वालिटी कंसर्नस इन प्राइमरी ऐजूकेशन इन इंडिया : वेयर इज द प्रोब्लम?* नई दिल्ली, न्यूपा

बत्रा, पी. (2014) प्रोब्लमेटाइजिंग टीचर ऐजूकेशन प्रैक्टिस इन इंडिया : *डेवेल्पिंग ए रिसर्च एजेंडा, एजूकेशन एस चेंज,* 18, पृष्ठ 55-518

बत्रा, पी. (2005) वॉइस एंड एजेन्सी ऑफ टीचर्स : ए मिसिंग लिंग इन द नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क, *इकोनोमिक एवं पॉलिटिकल वीकली,* पृष्ठ 4347-4356

बोयेड, डी.जे., ग्रोसमैन, पी.एल., लैंकफोर्ड, एच., लोयेब, एस. एंड. वाइकोफ, जे. (2009) टीचर प्रेपरेशन एंड स्टूडेंट अचीवमेंन्ट, *एजुकेशन इवेल्यूवेशनल एंड पॉलिसी एनालिसिस,* 31 (4), पृष्ठ 416-440

चौधरी, ए. (2013) पैनल टू मॉनीटर फर्स्ट टीचर एलिजिबिलिटी टेस्ट, *टाईम्स ऑफ इंडिया*

डायर, सी., चॉस्की, ए., अवस्थी, वी., अयैर, यू., मोयाडे, आर., निगम एन. एंड पूरोहित, एन. (2002) *डेमोक्रेटाइजिंग टीचर एजूकेशन रिसर्च इन इंडिया कम्पेरिटिव एजूकेशन,* 38 (3), पृष्ठ 337-351

गोल्डहेबर, डी एंड एन्थोनी इ (2007) कैन टीचर क्वालिटी बी इफैक्टिवली असैस्ट्ड? नेशनल बोर्ड सर्टीफीकेशन एज ए सिग्नल ऑफ इफैक्टिव टीचिंग; द *रिव्यू ऑफ इकोनॉमिक्स एंड स्टैटिसटिक्स,* 89 (1), पृष्ठ 134–150

गोल्डहेबर, डी. एंड ह्सेन, एम. (2010) रेस जेन्डर एंड टीचर टैस्टिंग : हॉफ इन्फॉर्मेटिव टूल इज टीचर लाइसेन्सुर टैस्टिंग? *अमेरिकन ऐजूकेशनल रिसर्च जर्नल,* 47 (1), पृष्ठ 218–251

कौशिक, एम. (2013, जून 13) टीचर ट्रेनिंग : ए हायर स्टैंडर्ड, बिजनैस टूडे

क्रैमर एम., चौधरी एम., रोजर्स, एफ., एच., मुरलीधरन, के. एंड हम्मर, जे. (2005) टीचर एबसैन्स इन इंडिया : ए स्नैपशोट, *जर्नल ऑफ द यूरोपियन इकोनोमिक एसोसिएशन,* 3 (2–3), 658–667

मिनिस्टरी ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलेपमेन्ट (2010) रिपोर्ट ऑफ द इंटरनेशनल सेमिनार ऑफ प्री सर्विस ऐलिमैंटरी टीचर एजूकेशन, गर्वमेन्ट आफ इंडिया, नई दिल्ली

एन. सी. आर. टी. (2005) पोजिशन पेपर ऑन नेशनल फोकस ग्रुप ऑन टीचर ऐजूकेशन फॉर करिकुलम रेनेवल, नई दिल्ली

मिशेल, जे.के., रोबिनसन, दी,प्लेक, बी.एस., व नोव्ल्स, के, (स.) (2001) टेस्टिंग टीचर कैन्डिडेट्स : द रोल ऑफ लाईसेन्सर टेस्ट्स इन इम्प्रूविंग टीचर क्वालिटी, नैशनल रिसर्च ग्रुप वाशिंगटन, डी.सी., द नैशनल अकेडिमिक्स प्रैस

एन. सी. टी. ई. (2009) नैशनल करिकुलम फॉर टीचर ऐजूकेशन : टूवार्डस ए ह्यूमेन एंड प्रोफेशनल टीचर, नई दिल्ली,

पोडगुर्सस्की, एम. (2005) टीचर लाइसैन्सिंग इन यू.ए. पब्लिक स्कूल्स : द केस फॉर सिम्पलिसिटि एंड फ्लैक्सिबिलिट, *पीबॉडी जर्नल ऑफ एजूकेशन,* 80 (30) पृष्ठ 15–43

प्रथम (2005) एनुअल स्टेट्स ऑफ ऐजूकेशन रिपोर्ट, प्रथम रिसोर्स सैन्टर, मुम्बई

रामाचन्द्रन, वी. (2005) टीचर मोटिवेशन इन इंडिया, नई दिल्ली : ऐजूकेशन रिसोर्स यूनिट

सिद्दकी, मो. ए. (2012) क्वालिटि टीचर ऐजूकेशन : ए क्रिटिक ऑन द रॉल ऑफ एन.सी.टी.ई., *यूनिवर्सिटी* न्यूज, 50 (29), 16–22

फैकल्टी ऑफ ऐजूकेशन (2013) द बैचलर ऑफ एलिमैंटरी ऐजूकेशन प्रोग्राम : रिव्यू रिपोर्ट, दिल्ली, यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली

यूनेस्को (2005) टीचर एंड ऐजूकेशनल क्वालिटी : मोनिटरिंग ग्लोबल नीड्स फॉर 2015

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 2, अगस्त 2015

द्वंद्व, हिंसा और बच्चों की शिक्षा
सैद्धांतिक रूपरेखा की पड़ताल

अजय कुमार सिंह*

सारांश

इस शोध-पत्र में एक सैद्धातिंक रूपरेखा रचने की कोशिश की गई है, जो द्वंद्व, हिंसा और बच्चों की शिक्षा के सम्बन्धों को समझने का आधार देती है। यह शोध-पत्र दर्शाता है कि हिंसा के अनुभवों और शिक्षा के बीच, 'बदलाव' और 'अहिंसक समाज रचने' का विचार है। इसका उद्देश्य चुनिंदा सिद्धांतों के जरिए एक ऐसे परिप्रेक्ष्य की रचना करना है, जिससे द्वंद्व और हिंसाग्रस्त समाज में बच्चों के हिंसा के अनुभव और उनकी शिक्षा को समझा जा सके। यह शोध-पत्र मेरे पी-एच.डी. शोध प्रबंध का हिस्सा है।

द्वंद्व, प्रतिरोध और हिंसा के अनुभव बच्चों के मामले में दिन-प्रतिदिन ज़्यादा सघन होते जा रहे हैं। न सिर्फ इनके स्वरूपों में बदलाव आ रहा है, बल्कि मिश्रित सामाजिक अनुभवों के चलते द्वंद्व और हिंसा के बच्चों पर पड़ने वाले प्रभाव तथा उनके द्वारा किये जाने वाले प्रतिरोध का फैलाव अलग-अलग तरह की रिपोर्टों में देखने को मिलता है। ऐसे साक्ष्यों के सामने आने की आवृत्ति बढ़ गई है जहाँ बच्चे द्वंद्व और हिंसा का अनुभव करते हैं, प्रतिरोध होता है और अनुभवों का पुनर्सृजन होता है। अगर हम भारत सरकार की रिपोर्ट (2007, पृ. 7) पर गौर करें तो पाते हैं कि हर तीन बच्चों में से दो किसी-न-किसी प्रकार की शारीरिक हिंसा या अपनी देह पर होने वाले अनुचित अतिक्रमण को झेलते हैं। संयुक्त राज्य संघ के महासचिव की रिपोर्ट (यूनाइटेड नेशन, 2005) बताती है कि भारत में तीन करोड़ से ज़्यादा बच्चे न सिर्फ हिंसा को झेल रहे हैं बल्कि एक ऐसे संकटग्रस्त मुहाने पर खड़े हैं जहाँ उनके सामने जीने की जटिल चुनौतियाँ हैं।

स्कूल अकेली ऐसी सार्वजनिक जगह है जो संगठित तौर से बच्चों पर विचार कर सकती है। बच्चों के द्वारा किये जाने वाले अनुभव और स्कूली शिक्षा के संदर्भ में उस

*टाटा सामाजिक विज्ञान संस्थान, मुम्बई-400088; ईमेल- ajay.singh@tiss.edu.

अनुभव का उपयोग करना, 'गुणवत्ता शिक्षा' पर विचार का एक अहम हिस्सा रहा है। भारतीय संदर्भ में बात की जाए तो पाते हैं कि बच्चों के अनुभवों के पुर्नसृजन को शिक्षा के केन्द्र में लाने की बात न सिर्फ कुछ विशिष्ट आंदोलनों और नवाचारी स्कूलों द्वारा की गई बल्कि इसे राष्ट्रीय महत्व के दस्तावेजों (एन.सी.ई.आर.टी., 2005) में भी जगह मिली।

साथ ही इस पर्चे में उस दायरे को भी समझने की कोशिश है जहाँ पर स्कूली शिक्षा बच्चों के अनुभवों, खास तौर से द्वंद्व और हिंसा के अनुभवों पर अपनी प्रतिक्रिया करती है या नहीं कर पाती। यह पर्चा मुख्य तौर पर तीन प्रश्नों के उत्तरों की खोज करता–

पहला– हिंसा क्या है और क्यों है?

दूसरा– बच्चों के अनुभवों में द्वंद्व और हिंसा का क्या प्रभाव होता है और ये अनुभव बच्चों के संज्ञान क्षेत्र में किस प्रकार का रूप धारण करतें हैं? और

तीसरा– स्कूली शिक्षा का बच्चों के इन (द्वंद्व और हिंसा के) अनुभवों से क्या सम्बन्ध है?

इस पर्चे के पहले हिस्से में हिंसा क्या और क्यों है को समझने का प्रयास है। इसके बाद हिंसा से उपजने वाले माहौल और उसके पुर्नसृजन की प्रक्रिया को रेखांकित करने की कोशिश भी की गई है। इसके लिए मुख्य रूप से गाँधी (1949), टैगोर (1931), फ्रेरे (1996) और अम्बेडकर (1979) मुखर्जी (2009) के विचारों को परिप्रेक्ष्य में रखते हुए हिंसा के माहौल और हिंसात्मक व्यवहारों को 'उपाय' मानने की सीमाओं को दर्ज किया गया है। ये विचार हमें हिंसा को मनुष्य की प्रकृति का अनिवार्य अंग मानने वाले सिद्धांतों, जैसे लोरेंज़ (1963), को खारिज करने का आधार देते है। इनसे हमें उन सिद्धांतों की सीमाओं को भी समझने में मदद मिलती है जो हिंसा को सामूहिक अवचेतन में दबे हुए बुरे अनुभवों के अवांछित प्रकटीकरण के रूप में दर्ज करते हैं (युंग, 2003, 2001 और फ्रायड, 2014)।

दूसरा प्रश्न– बच्चों के अनुभव के निर्माण में हिंसा के प्रभाव को समझने के लिए मुख्य रूप से रवीन्द्र नाथ टैगोर के दर्शन से मदद ली गई है। इसमें हॉल्ट (2007) और नील (2004) के विचारों से भी मदद ली गई है। यहाँ महात्मा गाँधी के दर्शन में निहित एक ऐसे वैकल्पिक समाज के परिप्रेक्ष्य में समझने की कोशिश की गई है जहाँ वे हिंसा को नियमित रूप से कम करते रहने के प्रयास को जीवन शैली में शामिल करने का दर्शन प्रस्तुत करते हैं।

इस पर्चे के आखिरी हिस्से में यह समझने का प्रयास है कि द्वंद्व और हिंसा के अनुभवों का स्कूली शिक्षा से क्या सम्बन्ध है और शिक्षा की प्रक्रिया के जरिए हम इसको

किस हद तक संबोधित कर सकते हैं। तीसरे प्रश्न को दो तरीके से समझने की कोशिश की गई है। सबसे पहले यह जानने की कोशिश की गई है कि वर्तमान स्कूली शिक्षा हिंसा के अनुभवों को किस तरह संबोधित करती है या नहीं करती है। इस क्रम में यहाँ हम डीवी (2009), हॉल्ट (2004, 2005, 2006), नील (2004), प्रसाद (1998), कुमार (1979, 2014) और ज़ीरो (1995, 2014) के विचारों और साहित्य के जरिए हिंसा और शिक्षा के संबंध को समझेंगे। इसके लिए डेविस (2004), दास (1985, 1987), तावील एवं वहार्ले (2004), प्रसाद (1974) की आलोचनात्मक टिप्पणियों व शोधों से मदद ली गई है। तीसरे प्रश्न का दूसरा भाग महात्मा गाँधी, रवीन्द्र नाथ टैगोर और पएलो फ्रेरे के विचारों और साहित्य के जरिए हिंसा के अनुभवों के संबंध में शिक्षा का एक संभावनाशील चरित्र प्रस्तुत करता है।

हिंसा को परिभाषित करने की कोशिश – हिंसा क्या है और क्यों है

दरअसल हिंसा क्यों है और इसका मूल क्या है इस प्रश्न के उत्तर के कई आयाम हो सकते हैं। वे सभी आयाम और उससे मिलने वाली समझ इस पर निर्भर करती है कि हम हिंसा की समझ के दायरे में किस तत्व, व्यवहार, अभिव्यक्ति, प्रतीक, संबंध जैसी ध ाारणाओं को शामिल करते हैं।

विपरित हितों के टकराव

नृवंशशास्त्र (मानवशास्त्र) ने मानव समाज में व्याप्त हिंसा को अपने अनुशासनिक दायरे के भीतर एक मुख्य स्थान दिया है। मानवशास्त्रियों का ज़ोर हिंसा 'क्यों' और 'क्या' से ज़्यादा इस बात पर रहा है, हिंसा किस चीज़ को संबोधित करती है, किस सामाजिक गठन, अ–गठन, बिखराव या दुहराव का बयान करती है। मानवशास्त्रियों ने वर्तमान की संरचना और उससे जुड़ी अन्य सूक्ष्म प्रक्रियाओं का अध्ययन किया (स्ट्रॉस, 1963/2002) और इस नतीजें पर पहुँचे कि सामाजिक सांस्कृतिक ढाँचा और हिंसा एक दूसरे के गठन में मदद करते हैं (रेपापोर्ट व ओवरींग, 2004)। यहाँ हिंसा एक ऐसी तकनीक है, खासतौर से नृवंशीय शास्त्रीय नजरिए से, जिसके जरिए कुछ विशिष्ट प्रकार के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक या आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है या उन्हें प्राप्त करने का इरादा होता है। इस विमर्श में ऐसा लगता है कि हिंसा विपरीत हितों के टकराव का नतीजा है।

मानवशास्त्रियों (एजेमेर, 2000) ने यह पाया कि हिंसा और समाज में एक संगठनात्मक रिश्ता है। वे मानते हैं कि हिंसा रोज़मर्रा के सामाजिक संबंधों और हलचलों के भीतर

शामिल है। हिंसा को वे मानव के एक ऐसे व्यवहार के तौर पर देखते हैं जो मान्यताओं, प्रचलनों, व्यवहारों, इच्छाओं के सम्प्रेषण के रूप में सामने आता है। मानवशास्त्री किसी सामाजिक परिघटना के दो अवयवों पर खासा ज़ोर देते हैं – स्वरूप और तत्व। स्वरूप का सरोकार इससे है कि संरचना क्या है? उसकी गतिकी कैसी है? उसकी उपस्थिति कैसी है? उसकी अवस्थिति क्या है? इस तर्ज पर देखें तो स्वरूप में भाषा, आख्यान, वर्गीकरण, संबंध, अवस्थिति जैसी चीज़ें शामिल होती हैं। अतः वो तमाम चीज़ें जिनको अनुभव किया जा सकता है और जिनके जरिए कुछ नियत तरीके से ज्ञान हासिल किया जा सकता है, स्वरूप के अंतर्गत आएंगी। जबकि 'तत्व' स्वरूप के जरिए बनने वाले मायने से सरोकार रखता है जो अलग-अलग व्यक्तियों और समूहों के लिए अलग-अलग मायने रखता है। इस समझ से यह कहने का आधार मिलता है कि सभी तरह के स्वरूपों (व्यवहार, संस्था और प्रक्रियाओं) के बीच एक बल प्रयोग (सत्ता) का संबंध होता है। जैसे फूको (1961) का एक मुख्य तर्क यह है कि हम एक अनुशासन के प्रभुत्व वाले समाज में रह रहे हैं, और यह एक प्रकार की सत्ता है। दरअसल एक का अनुशासन दूसरे के नियमों को तय करता है, जब दूसरा पक्ष इस अनुशासन की राजनीति को विखण्डित करने की प्रक्रिया की ओर बढ़ता है तब ताकतवर दण्ड का प्रयोग करता है। हम प्रारंभिक तौर पर इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि 'बल-समीकरण के हेरफेर' और 'अनुशासन' के भीतर लाये जाने या उसको तोड़ने की प्रक्रिया में हिंसा (मानव हिंसा) का आरंभ होता है (फूको, 1998)। यद्यपि बल के बरअक्स हिंसा पूरी तरह से एक दूसरा मसला है। यह (हिंसा) एक ऊर्जा है, पर सकारात्मक ऊर्जा नहीं, यह नकारात्मक ऊर्जा है। हिंसा हमारे काम की ताकत को बढ़ाती नहीं है बल्कि दूसरे पक्ष के अस्तित्व को ध्वस्त करती है, जबकि बल सकारात्मक है।

कौन-सा व्यवहार हिंसा में शामिल होगा, इसका सरोकार कम या अधिक स्थापित प्रचलनों और आख्यानों से है। ये प्रचलन व आख्यान ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के मध्य हुए राजनैतिक समझौतों से तय हुए हैं। मसलन चोमस्की (2004) ने व्यवस्थित रूप से दिखाया कि अमेरिका द्वारा कई छोटे देशों पर किये गये आक्रमणों को आतंकवाद (हिंसा का एक नकारात्मक स्वरूप) नहीं माना गया जबकि कई अन्य अपेक्षाकृत 'छोटी घटनाओं' को आंतकवाद का दर्जा दे दिया गया है। इसे एक अन्य उदाहरण से देखने की भी ज़रूरत है – जब नीतिगत वरीयताओं के चलते भारत के प्रतिवर्ष 20 लाख बच्चे (सर्कस, 2006) मरते हैं तो इसे हिंसा की घोषित समझ में शामिल नहीं किया जाता,

जबकि कई अन्य 'छोटी' घटनाएँ जो अपेक्षाकृत कम नुकसान पहुँचाती हैं, हिंसा के घोषित स्वरूप में शामिल कर ली जातीं हैं।

मानवशास्त्रीय और समाजशास्त्रीय नजरिए से हिंसा एक राजनैतिक सवाल है? यह समझ महत्त्वपूर्ण है पर इसके साथ यह जानना भी जरुरी है की 'हिंसा ही क्यों'? इस प्रश्न का उत्तर कुछ हद तक मनोविज्ञान से मिलता है। जैसा की लोरेन्ज (1963) बताते हैं कि आक्रामकता एक जैविक प्रक्रिया है या जब युंग (2003) हिंसा को एक मनोजगत के संचय के प्रकटीकरण के रूप में प्रस्तुत करतें हैं।

आक्रामकता की जैविक आवश्यकता

लोरेन्ज (1963) अलग-अलग प्रवृत्ति के कई 'जीवों के समाज' के व्यवहारों का एक खाका पेश करते हैं। लोरेन्ज ने पाया कि अपनी प्रवृत्ति में अलग होने के बावजूद जब ये जीव द्वंद्वात्मक स्थितियों का सामना करते हैं तो इनके व्यवहारों में एक अभूतपूर्व समानता देखने को मिलती है। जीवों के भीतर आक्रामकता उनके जीवन-संघर्ष का एक अनिवार्य हिस्सा है। यह सुरक्षा संसाधनों तक पहुँच, एक क्षेत्र विशेष में उपस्थिति, खाद्य पदार्थों पर नियंत्रण और प्रजनन के चुनाव जैसी जैविक ज़रुरतों को सुनिश्चित करता है। इससे यह भी सुनिश्चित होता है कि आबादी वहाँ मौजूद संसाधनों का एक सामान्य बंटवारा कर उनका अधिकतम इस्तेमाल करे। हालांकि एक बार जब ये ज़रुरतें पूरी हो जाती हैं तो आक्रामक व्यवहार में कमी आती है किन्तु आक्रामकता की प्रवृत्ति बनी रहती है। यह सिद्धांत बताता है कि मानव समाज में हिंसा अनिवार्य है क्योंकि आक्रामकता की जैविक आवश्यकता मानव प्रवृत्ति का एक अमिट संघटक है।

लोरेन्ज (1963) के मुताबिक इसके साक्ष्य कम मिलते हैं, जब अन्य जीव अपने समुदाय के भीतर अनावश्यक रूप से हिंसा या क्रूरता करते हों। इसके उलट मानव समाज के भीतर ज़रुरतों के पूरा होने और कमजोर द्वारा तुष्टीकरण कराये जाने के बावजूद एक सघन हिंसा के साक्ष्य पाये जाते हैं। क्रूर व्यवहारों की ऐसी अति केवल मानव समाज में ही पाई जाती है और प्रकृति में मानव समाज में एक दूसरे के प्रति बर्बरता के समानान्तर दूसरे उदाहरण नहीं हैं। इसका सबसे निराशाजनक तथ्य यह नहीं है कि धरती पर पाये जानेवाले तमाम जीवों में हम सबसे ज़्यादा क्रूर और बर्बर है। हालांकि कई बार जब हम इतिहास की उन किताबों को पढ़ते हैं जहाँ मानव ने मानव के ऊपर बर्बरता की है तब हम अपने डर और भय में दोबारा झांकते हैं।

मानव के अवचेतन और चेतना पर लिखे गये साहित्य, जैसे गाँधी और युंग, से गुजरते हुए ऐसा लगता है किमानव समाज के हिंसा, प्रचण्ड क्रूरता और विवेकहीनता की व्याख्या उस अन्तर्निहित आक्रामकता मात्र से नहीं हो सकती जिसको लोरेन्ज (1963) जैविक प्रवृत्ति कहते हैं।

अनुभव, अवचेतन और सामूहिक अवचेतन

फ्रायड (2014) के सिद्धांतों में अवचेतन एक व्यक्ति विशेष के भीतर उसके दबे-कुचले या भूल चुके अनुभवों का संचय है, जिसका खासा हिस्सा छः वर्ष की उम्र से पहले बन जाता है और किसी व्यक्ति विशेष के व्यवहार उस अवचेतन से निर्धारित होते हैं। जहाँ तक अवचेतन से व्यवहारों के नियंत्रण का सवाल है युंग (2003), फ्रायड से सहमत दिखते हैं, लेकिन युंग के मुताबिक फ्रायड की परिभाषा में यह अवचेतन सिर्फ एक व्यक्तिगत मसला है और यही उसकी सीमा है। उन्होंने निजी अवचेतन और सामूहिक अवचेतन में फर्क किया। उनके मुताबिक निजी अवचेतन का निर्माण लम्बी भूली-बिसरी यादों, दबे हुए अपमान और आहत होते हुए अनुभवों और निजी कहानियों से बनते हैं। लेकिन उन्होंने इस अवचेतन के दूसरे पहलू पर भी ज़ोर दिया, खासतौर से तब जब उन्होंने पाया कि विचलित, बेचैन और परेशान व्यक्तियों के सपने और फंतासी केवल उनके अपने निजी अनुभवों तक सीमित नहीं है बल्कि वे प्राचीन प्रतीकों के एक ऐसे संसार में प्रवेश करते हैं जहाँ पर चेतनशील तौर पर उनकी कोई पहुँच नहीं होती। उनके सपने और फंतासी कई ऐसे पौराणिक तत्वों और तथ्यों से बने होते हैं पर सीधे-सीधे उन तत्वों और तथ्यों से इन व्यक्तियों का कभी कोई सरोकार नहीं हुआ होता। इस तरह के अवलोकनों के बीच एक सामूहिक अवचेतन की धारणा प्रस्तुत की, जिसको उन्होंने एक लम्बी वंशानुगत विरासत के रूप में दर्ज किया।

मनोजगत की इस व्याख्या को करने के क्रम में युंग ने नई तरह की भाषावली का निर्माण किया और एक अनंत काल से संचित हो रहे सामूहिक अवचेतन को 'आद्यरूप' का नाम दिया और कई तरह के आद्यरूपों का ब्यौरा दिया। निजी अवचेतन के तत्व व्यक्ति के जीवनकाल में हासिल किए गए अनुभव से बनते हैं, वहीं सामूहिक अवचेतन के तत्व वे आद्यरूप होते हैं जो जीवन के प्रारंभ से ही मौजूद होते हैं। इसके लिए उन्होंने ऐसे विचारक्रम, कार्यों और व्यवहारों के पैटर्न का आवलोकन किया, जो व्यक्ति या व्यक्ति समूहों द्वारा बार-बार किया जाता है। हिंसा को समझने और समझाने के क्रम में चार महत्वपूर्ण आद्यरूप हैं - शैडो, एनीमा, एनीमस और ईगो। इसके अलावा भी उन्होंने बड़ी संख्या में अन्य तरह के आद्यरूपों का ज़िक्र किया है। ये आद्यरूप काफी हद तक हमारे

कार्य करने और निर्णय करने या व्यवहार सुनिश्चित करने में एक असरकारी भूमिका निभाते हैं। इन आद्यरूपों को हम सामूहिक अवचेतन के एक ऐतिहासिक संचय के रूप में देख सकते हैं।

उपरोक्त वर्णित विभिन्न आद्यरूप में 'शैडो', जिसको यहाँ हम प्रतिछाया कहेंगे, हमारे मनोजगत के गहरे तत्वों को प्रदर्शित करती है। युंग ने प्रतिछाया को समझाते हुए बताया कि यह उन तमाम अप्रिय गुणों (व्यक्तित्व के) का संचय है जिसे हम छुपाना चाहते हैं। इसके साथ ही यह हमारे निजी अवचेतन की वे गतिविधियाँ या तत्व हैं जो कि अल्पविकसित रह गई हैं। यह हमारे अन्दर अनुभवों के संकलन की एक ऐसी छिपी परत है जो हमारे द्वंद्व बिखराव और अराजकता में व्यक्त होती है। जैसा कि इसके नाम से लगता है कि यह एक ऐसी गहरी काली छाया है, जो अज्ञात है और कई तरह की परेशानियों की एक संभावित वजह है। युंग (2001) का मानना है की प्रतिछाया नियमों को तोड़ती है और इस क्रम में एक आंतरिक बिखराव, उथल-पुथल के नए दायरों की खोज करती है। प्रतिछाया में आवेग, उत्तेजना, रहस्य, रोमांच, विखंडन का एक गहरा एहसास होता है। मिथकों में ये राक्षस, दैत्य, पिशाच, अर्धमानव, रहस्मय लड़ाके और अज्ञात निशाचरों के रूप में पाए जाते हैं।

प्रतिछाया एक ऐसा आद्यरूप है, जो कि द्वंद्व की वजह बनता है। प्रतिछाया एक नैतिक द्वंद्व के रूप में समूचे व्यक्तित्व को चुनौती देती है। इसलिए निजी तौर पर इसके प्रति चेतनशील होने के लिए विशेष नैतिक प्रयास करने होते हैं। प्रतिछाया के प्रति चेतनशील होने के लिए यह जरूरी है कि हम व्यक्तित्व के धुँधले या अंधेरे पक्षों को उसकी वर्तमान वास्तविकताओं और संदर्भों के साथ रेखांकित करें। द्वंद्वग्रस्त समाज या व्यक्ति जब विशेष स्थितियों में हिंसा को अपनाता है या ना अपनाने का निर्णय लेता है तो दो अलग-अलग तरह की स्थितियाँ बनती हैं। पहली स्थिति यह है कि जब हम अपनी आदिम प्रवृत्तियों और अनुभवों के ऐतिहासिक संचय से बनी प्रतिछाया को ठीक से नहीं समझ पाते और उस प्रतिछाया के नियंत्रण में अपने व्यवहार या निर्णय का चयन करते हैं। दूसरी स्थिति वह होती है जब हमारी अंतर्चेतना और सद-इच्छाओं का प्रतिछाया से मिलन होता है और तब एक चेतनशील व्यक्तित्त्व की तरह हम अपने व्यवहार और नैतिकता का चयन करते हैं। यहाँ पर दूसरी स्थिति में एक जबरदस्त भीतरी प्रतिरोध देखने को मिलता है।

मानव चेतना और साधन के रूप में 'हिंसा'

जैसा कि ऊपर चर्चा में हमने देखा कि हिंसा को 'विपरीत हितों के टकराव', 'अनिवार्य जैविक ज़रुरत' या 'अवचेतन के प्रकटीकरण' के रूप में समझा गया है जहाँ हिंसा एक

साध्य की तरह दिखती है। हिंसा की उपरोक्त परिभाषाओं पर कोई निर्णायक समझ बनाने से पहले इसे मानव सभ्यता के विकास की दृष्टि से भी समझना होगा, जिसकी टोह हम गाँधी और टैगोर के साहित्य में कर सकते हैं। गाँधीवादी दृष्टिकोण में यह समझ है कि 'मानव, पशु से मानव बना है और उसकी मानवता क्रमशः बढती ही जाएगी' (कान्तिशाह, 2011, पृ. 4)। इस समझ से हमें यह आधार मिलता है कि हम उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर को खोजने के क्रम में सभ्यताओं की अर्जित चेतना को भी आधार बनायें जहाँ हमारे पास हिंसाग्रस्त समाज का विकल्प भी मौजूद हो।

गाँधी (1949), हिंसा को एक साध्य की तरह मानने की सीमाओं का ज़िक्र करते हैं। वे कई तरह के उद्धरणों और रूपकों के ज़रिये, मानवता की अर्जित 'चेतना' और 'समझ' को आधार बनाकर, अपने तर्क को स्थापित करते हैं। वे मानते है की एक चेतनशील समाज में हिंसा से हम कुछ भी अर्जित नहीं कर सकते हैं क्योंकि हिंसा को उपाय में लाते ही यह तय हो जाता है कि उससे जो चीज़ मिलेगी उसकी प्रकृति भी हिंसक ही होगी। उनका मानना है कि साधन बीज है और साध्य हासिल करने की चीज़ पेड़ है। इसलिए जितना संबंध बीज और पेड़ के बीच है उतना ही साधन और साध्य के बीच है। महात्मा गाँधी की नज़र में हिंसा एक ऐसा साधन है जिससे कुछ 'खास' तरह के साध्य तक ही पहुँचा जा सकता है और ये साध्य मानवता की ओर बढ़ते समाज के उद्देश्य नहीं हो सकते। इसे वे हिन्द स्वराज (गाँधी, 1949) में कई उद्धरणों के जरिए समझाते हैं। इस पुस्तक में संपादक अपने पाठकों के प्रश्नों के उत्तर देते हैं:

उद्धरण 1– जहाँ उनका पाठक यह सवाल करता है कि 'अंग्रेजों ने खुद जो हासिल किया है वह मार–काट करके ही किया है।' इस प्रश्न का उत्तर उन्होंने प्रतीकात्मक ढंग से दिया – 'अंग्रेजों ने मार–काट की और हम भी कर सकते हैं, यह बात तो ठीक है। लेकिन मार–काट से जैसी चीज़ उन्हें मिली वैसी ही हम भी ले सकते हैं। आप कबूल करेंगे कि वैसी चीज़ हमें नहीं चाहिए।' यहाँ महात्मा गाँधी ने साध्य और साधन, हिंसा को साधन मानने और उसकी सीमाओं का ज़िक्र किया है और वह यह मानते हैं कि हिंसा से जो कुछ हासिल किया जा सकता है उसकी सीमाएं है (पृ. 39)।

उद्धरण 2– अपने 'पाठक' के प्रश्न का उत्तर देते हुए बताया कि अगर आप किसी से कोई घड़ी पाना चाहें तो वह घड़ी कैसी होगी यह साधन पर निर्भर करता है। ''घड़ी पाने के लिए मैं जो साधन काम में लूँगा उसके अनुसार वह चोरी माल, मेरा माल या बख्शीश की चीज़ होगी (गाँधी, 1949, पृ. 41)''।

उद्धरण 3– उन्होंने हिंसा की अनिवार्यता पर भी सवाल उठाए। जब वे 'पाठक' के इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि 'चोर मेरे घर में घुसे तब क्या मैं साधन का विचार करुँगा'? यहाँ पर संपादक अपने पाठक का उत्तर देते हुए कहते हैं कि उस जटिल स्थिति में भी आप साधन का विचार करते हैं और यह परिस्थिति पर निर्भर है कि आप किस प्रकार के साधन का इस्तेमाल करेंगे।

उपरोक्त तीनों उद्धरणों में महात्मा गाँधी ने मानव सभ्यता के व्यापक उदेश्यों को संदर्भ बना कर हिंसा की सीमाओं को दिखाया है। हिंसा को किसी भी चीज़ का उपाय मानने में यह तर्क होता है कि साध्य की प्राप्ति के बाद स्थितियों को पुराने तरीके से नियोजित किया जा सकता है (गाँधी, 1953, पृ. 49)। महात्मा गाँधी के विचारों में न सिर्फ हिंसा के बरक्स अहिंसा को नैतिक तौर पर ज़्यादा ऊँचा स्थान दिया गया है पर साथ ही वे अहिंसा को एक साधन के रूप में भी हिंसा से ज़्यादा कारगर मानते है। जबकि टैगोर इससे आगे बढ़कर कहते हैं कि क्रोध और आक्रामकता की तृप्ति का साधन एक तरह का असंयम मात्र ही होता है। जब क्रोध की उन्मत्तता अपनी चरमसीमा पर पहुँचती है तो उद्देश्य की प्राप्ति पीछे रह जाती है। टैगोर के मुताबिक अच्छे प्रयोजन से भी की जाने वाली कार्यवाही के उन्माद में बदल जाने की आशंका होती है। जैसे वे आन्दोलनों में छात्रों के शामिल होने पर अपनी आशंका दर्ज करते हैं:

> *''हमारे विद्यार्थियों के बलिदान की न्यौछावर किस लिए? पूर्ण शिक्षा के लिए नहीं बल्कि अशिक्षा के लिए। इसकी पृष्ठभूमि में सर्वनाश का भीषण आनन्द है जो अपनी पराकाष्ठा में तपश्चर्या है और अपनी निकृष्ट अवस्था में भयानक उन्माद है जिसमें मानव स्वभाव सामान्य जीवन की मौलिकता में विश्वास खो बैठता है और निरर्थक-विध्वंस में निस्पृह सुख खोजने लगता है।'' (भट्टाचार्य, 2005, पृ. 58)*

सभ्यताओं में शामिल हिंसा

महात्मा गाँधी ने हिंसा के तत्वों को आधुनिक सभ्यता की संरचना में शामिल बताया, जैसा कि वे 'हिंद स्वराज' में बताते हैं कि हम सुविधाओं के बढ़ जाने को सभ्यता की प्रगति की निशानी के तौर पर देखते हैं। वे आधुनिक सभ्यता और प्रतियोगिता के पागलपन को दर्ज करते हुए ये बताते हैं कि यह प्रतियोगिता हमें एक तरह की हिंसा की ओर ले जाती है। हिन्द स्वराज की प्रस्तावना में गाँधी (1949) लिखते हैं, मुझे लगा कि हिंसा हिन्दुस्तान के दुखों का इलाज नहीं है और उसकी संस्कृति को देखते हुए उसे आत्मरक्षा के लिए कोई अलग और ऊँचे प्रकार का शस्त्र काम में लाना चाहिए। इस क्रम

में वे तत्कालीन पश्चिमी सभ्यता की आलोचना प्रस्तुत करते हैं और यह बताते हैं कि वह सभ्यता किस प्रकार हिंसक सभ्यता हो चुकी है और उसके किन-किन रूपों में हिंसा को हम प्रगट रूपों में देख सकते हैं। वे एक वैकल्पिक और अहिंसक सभ्यता का दर्शन प्रस्तुत करते हैं। वे मानते हैं कि इस अहिंसक सभ्यता का ताना-बाना उपयुक्त शिक्षा-पद्धति और उपयुक्त तकनीक के जरिए ही हो सकता है (परेल, 1997)।

रोज़मर्रा के जीवन में शामिल हिंसा को समझने के लिए हमें समाज और अर्थतन्त्र में शामिल उन मूल्यों को देखना होगा जिनके आधार पर वे काम करतें है। इस क्रम में अगर हम गाँधी और टैगोर के विचारों के जरिए समाज और अर्थतन्त्र में शामिल मूल्यों की विवेचना करें तो कुछ हद तक समझ बनती है। अर्थतन्त्र पर गाँधी (1955) की निम्न टिप्पणी से हमें यह समझने में मदद मिलती है कि अहिंसा को समाज की कल्पना में कैसे अपनाया जाये।

> *''सच पूछा जाये तो कोई प्रवृत्ति और कोई भी उद्योग, चाहे कितना ही छोटा हो, थोड़ी-बहुत हिंसा के बिना संभव नहीं है। कुछ-न-कुछ हिंसा के बिना जिन्दा रहना भी असंभव है। हमें करना यही है कि हम उसे यथासंभव ज़्यादा-से-ज़्यादा घटायें। वास्तव में अहिंसा शब्द का, जो नकारात्मक है, अर्थ ही यह है कि जीवन में जो हिंसा अनिवार्य है उसे छोड़ देने का वह प्रयत्न है।'' (गाँधी, 1955, पृ. 41)*

वे मानते हैं कि अहिंसा को व्यवहार में लाने के क्रम में हमारा यह काम है कि हम प्रयत्नपूर्वक हिंसा को कम करें। इस प्रयत्न में सामूहिकता पर बल देते हुए वे कहते हैं कि 'अहिंसा केवल व्यक्तिगत सद्गुण नहीं है वह एक सामाजिक सद्गुण भी है, जिसका विकास अन्य सद्गुणों की भांति किया जाना चाहिए।' वे मानते हैं कि अहिंसा को हमें सामाजिक सद्गुण की तरह विकसित करना है तो वह मात्र एक नैतिक उपदेश न होगा, बल्कि इस दर्शन के आधार पर हमें एक समतामूलक समाज की स्थापना करने पर बल देना होगा। जहाँ वर्ण के रूप में जाति में ऊँच-नीच के भेदभाव में कोई गुंजाइश नहीं होगी या फिर अलग-अलग तरह के श्रम करने वालों के बीच सामंजस्य और समता होगी। स्त्री और पुरुषों में बराबरी का भाव होगा, हालांकि उनके कार्य की दिशा अलग-अलग हो सकती है।

टैगोर के दर्शन में लोगों के स्वभाव, उनकी प्रकृति और उनकी संस्कृति को समझने पर खासा ज़ोर रहा है, जहाँ सार्वभौमिक मानवतावादी मूल्यों को विशेष जगह दी गई।

रविन्द्रनाथ टैगोर ने अहिंसा और सत्य को और गहराई से समझने और सभ्यताओं के ताने-बाने में छुपी हिंसा को रेखांकित करने पर ज़ोर दिया। वे कहते हैं कि 'पश्चिम का दृढ़ विश्वास भौतिक शक्ति और सम्पन्नता में है और इसलिए चाहे शांति और निरस्तरीकरण के लिए कितना ही ज़ोर से चिल्लायें, इसकी विकरालता उग्र होती जाती है।' (भट्टाचार्य, 2005; पृ. 55)। टैगोर के साहित्य में हिंसा की आशंका और उससे निपटने की एक व्यापक तैयारी का ज़िक्र बार-बार आता है। वे मानते हैं कि 'पाश्विक बल से नैतिक बल श्रेष्ठतर शक्ति हैं और अच्छाई को अपने सत्य और ताकत को भयमुक्ति के जरिए स्थापित करना चाहिए'। वे एक ऐसी सभ्यता की कल्पना करते हैं जहाँ स्वतंत्र और भयमुक्त वातावरण हो, लेकिन साथ ही वह यह भी मानते हैं कि ऐसा होना महज संयोग पर निर्भर नहीं है, बल्कि हमें ऐसे नैतिक मूल्यों को अपने समाज में विकसित करना होगा, जिससे हम पूर्णता को पा सकें।

हिंसा के अनुभव और बच्चों का संज्ञान क्षेत्र

स्कूली शिक्षा बच्चों के अनुभव के पुर्नसृजन में किस हद तक कारगर हो सकती है, यह सवाल हालिया दौर में भारतीय समाज में काफी मज़बूत रूप में उभरा है। इसके साथ ही यह प्रश्न भी जुड़ा है कि स्कूली शिक्षा बच्चों के परिवेश में मौजूद द्वंद्व और हिंसा के अनुभव को किस हद तक समेट पाती है या उस पर प्रतिक्रिया कर सकती है। हाल के विमर्शों में हिंसा को समझने की अकादमिक कोशिशें सैद्धांतीकरण की ओर भी बढ़ी हैं और शांति की शिक्षा को एक विकल्प के रूप दर्ज किया गया है (रैपापोर्ट, 1995; एन.सी. ई.आर.टी., 2006)।

सामाजीकरण और बच्चों का संज्ञान जगत

शिक्षाशास्त्र के विमर्श में बच्चों के विकासक्रम को कई स्तरों पर समझा गया है। जिसमें उनके सामाजिक विकास के स्तर, नैतिक विकास और संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न स्तरों की बात की गई है। ये स्तर हमारे सामने बच्चों की एक विशिष्ट रचना प्रस्तुत करते हैं। जिसमें वो मूर्त से अमूर्त की ओर बढ़ रहा होता है तथा उसकी सामाजिकता और नैतिकता का सापेक्षिक विकास हो रहा होता है। विकास के इन सिद्धांतों से ऐसा लगता है कि विकास का एक क्रम होता है। इस क्रम में आगे बढ़ें तो हमें ऐसे तर्क और विमर्श की ज़रुरत महसूस होती है जिसके आधार पर हम हिंसा के अनुभवों और उनके पुर्नसृजन को एक सैद्धांतिक रूपरेखा के तहत समझ सकें।

हिंसा अलग-अलग लोगों पर अलग-अलग प्रभाव डालती है। हिंसा सहने वाला, करने वाला और निरपेक्ष अवलोकनकर्ता इन प्रभावों को अलग-अलग तरीके से महसूस

करता है। बच्चे जब स्कूल पहुँचते हैं तो वे हिंसा के अनुभवों की एक विरासत के साथ होते हैं। स्कूल हिंसा की इस विरासत पर अक्सर एक अनभिज्ञता दर्शाता है। सामाजिक, आर्थिक अंतर के कारण व्याप्त हिंसा के विभिन्न रूपों का अध्ययन करते हुए प्रसाद (1974) ने ग्रामीण हिंसा के दो मुख्य वर्ग किये- 'स्थाई हिंसा' और 'तात्कालिक हिंसा'। वह बताते हैं कि तात्कालिक हिंसा के होने में सामयिक समस्याऐं एवं परिस्थितियां अधिक प्रभावी होती हैं और यह समय-समय पर उत्पन होती है। बच्चों के सीमित अनुभवों में तात्कालिकता का बड़ा महत्व होता है। स्थाई हिंसा, जिसे हम ढाँचागत हिंसा के तौर पर भी रेखांकित कर सकतें हैं, का सीधा सरोकार बच्चों के रोज़मर्रा के अनुभवों और उनके सामाजीकरण से है। ऐसा लगता है कि किसी भी तरह की हिंसा में तात्कालिक तथा स्थायी दोनों प्रकार के कारण मौजूद रहते हैं। स्थाई या तात्कालिक हिंसा के संचित अनुभव बच्चों के संज्ञान जगत में नियमित रूप से प्रवेश करते रहे हैं।

बच्चों के अनुभव और उनके संचय की प्रकृति को समझना जरुरी है। हिंसा के अनुभवों का संचय और उसके जरिए बनने वाले बच्चों के संज्ञान क्षेत्र को हम बच्चों के सामाजीकरण और शिक्षा के साथ-साथ उनके आस-पास होने वाली कई गतिविधियों में भी देख सकते हैं। प्रसाद (1974) के उपरोक्त वर्गीकरण से इसमें काफी मदद मिलती है। बच्चे के सामाजीकरण में यह निहित है कि वह अपनी जातिगत, लैंगिक या वर्गीय स्थिति से प्राप्त अपनी सामाजिक अवस्थिति के चलते अपनी पूर्वनिर्धारित भूमिका को आत्मसात करता है। इसके अपने द्वंद्व भी होते हैं। इस दौरान वह बड़ों के व्यवहार का अवलोकन करता है। इस समाजीकरण में तरह-तरह के अनुष्ठानों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रक्रिया में वह अपने लिए एक अवधारणात्मक स्थान बना चुका होता है। सामाजीकरण के जरिए बच्चे को यह स्वाभाविक लगने लगता है।

नील (2004) फ्रायड को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि 'फ्रायड ने आक्रामकता पर जो बल दिया है वह घरों और स्कूल की वास्तविकता के कारण ही दिया है' (पृ. 16)। वे मनोविज्ञान के इस तर्क से सहमत दिखते हैं कि 'बच्चों को अधिकतर मानसिक नुकसान उनकी ज़िन्दगी के पहले पांच सालों में पहुँचता है' (पृ. 76)। प्रसाद (1974) के वर्गीकरण से देखें तो नील बच्चों और बड़ों के संबंध और संवाद में एक तरह की स्थाई हिंसा को पाते हैं जो भय का सृजन करती है और तब बच्चों के व्यवहार भय से निर्देशित होते हैं। ऐसे अवसर बहुत कम होते हैं जब हम बच्चों के इस मानसिक नुकसान की भरपाई कर सकें बल्कि बड़ों में सत्ता का लोभ ऐसा करने से रोकता है (हॉल्ट 2005)।

ऐसे माहौल में बच्चों के तर्क और कल्पनाओं में हिंसा समाती चली जाती है। यह देखना महत्वपूर्ण होगा कि समाज में व्याप्त विभिन्न तरह के द्वंद्व बच्चों के भाव-जगत का निर्माण कैसे करते हैं। इसको समझने के लिए टैगोर के एक उद्धरण को देखते हैं :

> *एक बच्ची के साथ वे एक कहानी बना रहे हैं, बतौर 'नायकख़ व एक कमरे में बंद हैं और बच्ची नायक से पूछती है कि 'आप अपनी स्वतंत्रता के लिए क्या करेंगे', नायक का जवाब था की 'मदद के लिए आवाज़ लगाऊंगा'। बच्ची अपनी कल्पनाओं में एक के बाद एक नये अवरोध खड़ी कर रही है। कल्पना का क्रम कुछ ऐसे चलता है - नायक जब मदद के लिए पुकारता है तो बच्ची वहाँ मदद के लिए मौजूद किसी भी पड़ोसी के होने की संभावना को समाप्त करती है। जब नायक दरवाजा तोड़ने की कोशिश करता है तो बच्ची उस दरवाजे को एक लोहे के दरवाजे में तब्दील करती है और अंत में जब चाभी मिलती है तब भी नायक उस दरवाजे को खोल नहीं पाता है। इस पूरी प्रक्रिया में बच्ची एक ऐसे कैद का सश्जन करती है जहाँ से नायक का निकलना असम्भव है (टैगोर, 1931, पृ. 33)।*

उपरोक्त उद्धरण बच्ची के एक विशेष संज्ञानात्मक जगत की ओर इशारा करता है। यहाँ यह समझ में आता है कि ऐसे भाव और समझ बच्चों के संज्ञानात्मक जगत में, उनकी स्मशतियों के रूप में, दर्ज होते हैं, बहुधा किसी बुरे प्रतीक और बिम्ब के रूप में, एक धोखे के रूप में या एक भटकाव और उलझन के रूप में, जब वे इन स्थितियों से सामना करते हैं तो उन्हें एक गहरे डर या ऐसे ही किसी अन्य एहसास का बोध होता है। कई बार यह सीधे-सीधे उनकी भौतिक गतिविधियों में भी प्रतिबिम्बित होता है। बातचीत के दौरान शिक्षक इसको बच्चों के भटकाव, अर्धचेतना, खालीपन के रूप में व्यक्त करते हैं। बच्ची के भाव को देखकर ऐसा लगता है कि भावनाएं किसी व्यक्ति द्वारा की जाने वाली क्रिया नहीं हैं, बल्कि उसके साथ होने वाली क्रिया है।

हिंसा, डर का परिवेश और बच्चे

दास (1985) ने सघन हिंसा के अनुभवों से गुजरे बच्चों के अध्ययन के आधार पर यह प्रस्तुत किया कि इस तरह के अनुभवों से बच्चे न सिर्फ नये व्यवहार को सीखते हैं बल्कि हिंसा से ग्रसित समाज में जिस माहौल की रचना होती है वह बच्चों की समझ और तर्क को वास्तविकता से दूर ले जाता है और तथ्यों से परे एक समानांतर जगत को रचने की शुरुआत हो जाती है। जहाँ अलग-अलग तरह के नियम बनते हैं और एक अलग तरह

की भाषा का प्रयोग शुरु हो जाता है। वे बताती हैं कि हिंसाग्रस्त समाज और हिंसात्मक गतिविधियों के केन्द्र में एक डर काम करता है जो अविश्वास के माहौल का सृजन करता है। हिंसा और प्रतिहिंसा के माहौल में डर और भय के इस बुरे प्रभाव से उबरने के लिए गाँधी जी ने अहिंसा के दर्शन में भयमुक्ति को एक अहम स्थान दिया, उनका मानना है कि 'हिंसा में भय से मुक्ति नहीं मिलती, वह भय से बचने का इलाज ढूंढने का प्रयत्न है, जबकि अहिंसा में भय का स्थान ही नहीं है' (गाँधी, 2008, पृ. 15)। डेविस (2004) और तावील (2004) के अध्ययनों से पता चलता है कि इन स्थितियों में ज़्यादातर शिक्षा प्रक्रिया की बहाली को शांति के चिन्ह के रूप में देखा जाता है हालाँकि इसके साक्ष्य कम ही मिलते हैं जहाँ बच्चों की अनुभवों को कक्षा संवाद में शामिल किया जाता हो।

हिंसा और प्रतिहिंसा के माहौल में इन प्रक्रियाओं का पुर्नसृजन करने वाले तर्क और भाषा प्रभावी हो जाते हैं और ऐसा लगता है कि बच्चे इनको काफ़ी तेज़ी से सीखते हैं। हिंसा की कोई भी घटना अकेले में नहीं घटती बल्कि वह चली आ रही प्रक्रियाओं का प्रगटीकरण होती है और नई प्रक्रिया का सूत्रपात करती हैं। हिंसा जिन प्रक्रियाओं का प्रगटीकरण है उनके केन्द्र में एक असमतामूलक और अन्यायपरक सामाजिक ताना-बाना होता है। यह असमता अलग-अलग वर्ग और समूह के लोगों के लिए अलग-अलग तरह के नैतिक मानदण्ड़ों को स्थापित करती है। इन 'स्थापित' मानदण्ड़ों को सत्य की तरह देखने की प्रवृत्ति शोषण और वर्चस्व का कारण बनती है जिससे प्रतिरोध पनपता है। हिंसा चक्रिय रूप से एक परिवेश को बनाती है, ऊपर हमने जिन शोषण, वर्चस्व, और प्रतिरोध का ज़िक्र किया वे अनिवार्य तौर पर सामाजिक ताने-बाने की उपज हैं। यहाँ दो अलग-अलग प्रक्रियाओं का टकराव दिखता है-

- समाज में वर्चस्व स्थापित करने के लिए किया जाने वाला शोषण और
- समाज को समतामूलक बनाने के लिए किया जाने वाला प्रयास

फ्रेरे (1996) बताते हैं कि एक असमतामूलक समाज में जहाँ एक वर्ग दूसरे का शोषण करता है उसमें हिंसा अंतर्निहित है। वे मानते हैं कि ''उत्पीड़न का संबंध स्थापित होते ही हिंसा आरम्भ हो चुकी होती है। हिंसा की स्थितियों की शुरुआत और उनको बनाये रखने का काम वे करते हैं, जो उत्पीड़न करते हैं, शोषण करते हैं (पृ. 36)।'' वे उत्पीड़कों और उत्पीड़ितों की 'हिंसा' में फर्क करते हुए कहते हैं कि उत्पीड़कों की हिंसा पूर्णतर मनुष्य बनने में बाधा है वहीं उत्पीड़ितों की जवाबी कार्रवाई 'मनुष्य बनने का अधिकार पाने की इच्छा' है। हालाँकि वे मानते हैं कि उत्पीड़कों के मानुषीकरण की जिम्मेदारी भी उत्पीड़ितों पर ही है।

पहली प्रक्रिया के विपक्ष में कई तर्क मिलते हैं। लेकिन गाँधी और टैगोर दूसरी प्रक्रिया में शामिल हिंसा के खतरों को भी इंगित करते हैं, खास तौर से तब, जब वर्चस्व और शोषण के विरोध में हिंसा को एक साधन माना जाता है। टैगोर के मुताबिक 'शक्ति के सभी रूप अतार्किक हैं, यह आँखों पर पट्टी बंधे हुए एक ऐसे घोड़े की तरह है जो गाड़ी खींच रहा है और इसमें नैतिकता का तत्व उस शख्स में निहित है जो घोड़ा हाँक रहा है' (भट्टाचार्य 2005, पृ. 49)। निष्क्रिय प्रतिरोध भी एक प्रकार का बल है जो कि अनिवार्य रूप से अपने आप में अहिंसक नहीं है। इसका इस्तेमाल भी सत्य के विरोध में किया जा सकता है। जब इस प्रकार के बल को सफलता मिलती है तो इसमें छुपे हुए खतरे के बढ़ जाने की आशंका होती है। यह समझ आन्दोलनों (हिंसक या अन्य) और उनके नायकों की सफलता के प्रति बच्चों के आकर्षण की एक व्याख्या करती है।

'हिंसा साक्षरता' और अहिंसा का व्याकरण

राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र (एन.सी.ई.आर.टी., 2006) 'शांति के लिए शिक्षा' यह इंगित करता है बच्चे अनजाने ही हिंसा की पाठशाला में पलते-बढ़ते जाते हैं और बच्चों को हिंसा की विचारधाराओं की शिक्षा देते हुए यह काम बहुत सक्रिय तरीके से किया जा रहा है। यह पत्र 'समन्वयकारी आदर्शों' और 'सार्वभौमिक मूल्यों' के निष्क्रिय होने और 'हिंसा साक्षरता' के सार्वभौमिक होने के खतरों की ओर इशारा करता है। नील (2004) 'हिंसा साक्षरता' को बड़ों के व्यवहार और पूर्वाग्रह के जरिए बच्चों के मन में बैठाये जाने वाले भय के चक्रीय प्रभाव में रेखांकित करते हैं। वे बच्चों के संदर्भ में अपनाये जाने वाले व्यवहारों में निहित हिंसा के बर-अक्स एक 'स्वनिर्देशित' बच्चे की कल्पना करते हैं जहाँ बड़ों की भूमिका एक समन्वयक की होती है।

नील की यह समझ, टैगोर और गाँधी के अहिंसक समाज की कल्पना से काफ़ी मेल खाती है। अहिंसक समाज की यह कल्पना हमें वह आधार देती है जहाँ हम हिंसा और हिंसात्मक गतिविधियों से बनने वाले माहौल को रेखांकित कर सकते हैं। महात्मा गाँधी अपने अहिंसा दर्शन में अहिंसात्मक-आधार, अभय, सत्याग्रह, नम्रता, असहयोग, जैसे शब्दों को व्याख्यायित करते हैं। अहिंसा की व्याख्या करने वाले इन शब्दों को गाँधी-साहित्य के जरिए पढ़ें तो हमें हिंसात्मक प्रवृत्तियों से रेखांकित करने का एक मुकम्मल आधार मिलता है। वह अहिंसा को परिभाषित करते हुए यह बताते हैं कि कौन-सी प्रवृत्तियाँ या कौन-सा व्यवहार हिंसा में शामिल है जैसे–

> *''अहिंसा ऐसी स्थूल चीज़ नहीं जैसी बताई गई है। बेशक, किसी प्राणी को चोट न पहुँचाना अहिंसा का एक अंग हैं। परन्तु वह तो उसका छोटे-से-छोटा चिन्ह है। अहिंसा के सिद्धांत का भंग हर बुरे विचार से, अनुचित जल्दबाजी से, झूठ बोलने से, घृणा से और किसी का बुरा चाहने से भी होता है। दुनिया के लिए जो भी वस्तु जरुरी है, उस पर अधिकार जमाने से भी यह सिद्धांत भंग होता है।'' (1955, पृ. 10)*

गाँधी दर्शन में प्रस्तुत अहिंसा का व्याकरण उन प्रवृतियों को रेखांकित करने का आधार बनता है जो हिंसा साक्षरता की वजह बनती हैं। उनका मानना है कि हिंसा, करने वाले और सहने वाले दोनों के बीच, एक डर का माहौल बनाती है। डर के इस माहौल को तोड़ना और निर्भयता को अपनाने से ही हम अहिंसा को व्यवहार में ला सकते हैं। उनके दर्शन में 'अभय' का एक महत्वपूर्ण स्थान है, वे इस विचार को न सिर्फ व्यक्तिगत व्यवहार के रूप में प्रस्तुत करते हैं बल्कि वे इसे सामाजिक संरचना का भी आधार बनाते हैं। जैसे- वह एक अहिंसक अर्थतन्त्र पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि 'हम न केवल जो मिल सके उसे पाने का विचार छोड़ देंगे परन्तु जो सबको न मिल सके उसे लेने से इंकार कर देंगे।' महात्मा गाँधी अहिंसा को साधने के प्रयत्न का ज़िक्र करते हुए कहते हैं कि 'अहिंसा कोई यांत्रिक क्रिया नहीं है। यह हृदय का सर्वोत्तम गुण है और उसे प्रयत्नपूर्वक पा लेने पर ऐसा महसूस होता है कि वह स्वाभाविक गुण है।' उन्होंने अहिंसा की सामूहिकता पर बल दिया और कहा कि ''मेरी राय में अहिंसा केवल व्यक्तिगत सद्गुण नहीं है, वह एक सामाजिक सद्गुण भी है, जिसका विकास अन्य सद्गुणों की भांति किया जाना चाहिए'' (गाँधी, 1955, पृ. 61)।

गाँधी जिसे अहिंसा कहते हैं वह व्यवहार टैगोर के सहित्य में मानव की गरिमा और स्वतंत्रता के प्रति एक असीम विश्वास की तरह झलकता है। वह मानते हैं कि जब भी किसी समूह या व्यक्ति के अस्तित्व को दबाने की कोशिश की जाती है तो उसका असर न सिर्फ समाज पर होता है बल्कि पूरा देश उस असर को झेलता है। इसी तरह जब किसी देश या समूह को दबाया जाता है तो उसका असर पूरा विश्व महसूस करता है। वह प्रत्येक व्यक्ति की चेतना, गरिमा और स्वतंत्रता को एक वृहत्तर ब्राह्मणीय चेतना की इकाई के रूप में देखते हैं।

टैगोर के मुताबिक, स्वतंत्रता में महज मुक्त हो जाने के बोध का कोई मायना नहीं है। पूर्ण स्वतंत्रता इस दुनिया से सौहार्द का संबंध बनाने में है जहाँ हम इसको केवल जानते

भर नहीं हैं बल्कि उसका हिस्सा होते हैं। बच्चे अपनी ज्ञानेंद्रियों की ताजगी की वजह से इस दुनिया के संपर्क में आते हैं और यह उनके लिए एक बड़ा वरदान है। वे कहते हैं कि मैंने अपने स्कूल में इसकी पूरी कोशिश की कि मैं बच्चों में प्रकृति को लेकर उनके एहसासों की ताजगी को बनाये रखूँ और उसे विकसित करूँ। जहाँ वे अपने आस-पास के मानव संबंधों को लेकर संजीदा और संवेदनशील हों। वे मानते हैं कि बुद्धि और शक्ति का विकास सभी जीवों के लिए जीने की आवश्यकता में शामिल है लेकिन चेतना का विकास मानव को अन्य जीवों से अलग करता है। एक अहिंसक और मानवीय सभ्यता की परिकल्पना करते हुए वह 'परिवर्तन', 'सत्य की शक्ति', 'बन्धुत्व', पर बल तो देते ही हैं साथ ही 'अलगाव', 'संकीर्णता', 'आत्मकेन्द्रियता' की समस्याओं को भी बताते हैं।

हिंसा से मुकाबला और शिक्षा से अपेक्षा

जैसा की पहले कहा गया है कि बच्चे के सामाजीकरण में यह निहित है कि उसे अपनी सामाजिक अवस्थिति, स्वाभाविक लगने लगती है। इसके अपने द्वंद्व है। पर शिक्षा की प्रक्रिया में इस स्वाभाविकता को नज़रअंदाज़ करना एक बड़ी समस्या है। वर्तमान 'स्कूली व्यवस्था' और शिक्षा प्रक्रिया हिंसा के इन अनुभवों से मुँह मोड़कर चलती है और शिक्षक अपने रोज़मर्रा के कामों का संपादन करते रहते हैं। इस समस्या को भारत के किसी भी गाँव या शहर में देख सकते हैं जिसे यहाँ हम एक गाँव के अध्ययन के जरिए समझने की कोशिश कर रहे हैं।

हिंसा से मुकाबला करने के क्रम में टैगोर (1961, 1986) और गाँधी (1955ए) एक अलग तरह की शिक्षा-नीति की कल्पना करते हैं। टैगोर ग्रामीण शिक्षा पर टिप्पणी करते हुए बताते हैं कि 'शिक्षा की व्यवस्था' यह विचार लेकर नहीं बनाई जानी चाहिए कि इन ग्रामीणों को शिक्षा की बहुत कम ज़रुरत है इसलिए इनके दिमाग के लिए उपयुक्त एक ग्रामीण शिक्षा को किसी तरह खोज-खाज लेना ही काफी है। जबकि गाँधी शिक्षा के केंद्र में ऐसे हुनर और ज्ञान को रखने की बात करते हैं जो इसके बुनियादी ढाँचे को एक अहिंसक रूप दे। गाँधी और टैगोर का दर्शन यह प्रस्तुत करता है कि शिक्षा के जरिए हम न सिर्फ हिंसा से मुकाबला कर सकते हैं बल्कि एक अहिंसक समाज को रचने की ओर बढ़ सकते हैं। लेकिन शिक्षा को लेकर 'प्रचलित' समझ और व्यवहार अपने आप में एक तरह की हिंसा को समेटे हुए है। जैसा टैगोर कहते हैं, उस हिंसा का एक हिस्सा ये भी हैं कि हम गाँव की शिक्षा से बहुत अपेक्षा नहीं रखते। गाँव में शिक्षा पूर्णता हासिल करने का

'न्यूनतम मानक' लेकर चलती है जहाँ शिक्षा की सबसे बड़ी सफलता यह होती है कि बच्चे शहरी क्षेत्रों में दी जाने वाली संस्थाई शिक्षा में फिट हो सकें। गाँधी के 'ग्राम स्वराज' का विचार गाँव की शिक्षा प्रक्रिया को एक सार्थकता देता है। जिसमें न सिर्फ ज्ञान के मानक कौशलों को बच्चे सीखें बल्कि सीखने की इस प्रक्रिया के केन्द्र में ऐसे देशज हुनर हों जो बच्चों को गाँव की रोज़मर्रा की ज़िंदगी और प्रक्रियाओं में शामिल सूचनाओं, कौशल और ज्ञान से परिचित कराएं।

हालिया हस्तक्षेपों (शिक्षा को लेकर चलायी जाने वाली परियोजनाएँ व सेवाकालीन शिक्षण प्रशिक्षण) पर गौर करें तो लगता है कि भारतीय समाज में गाँव को एक प्रयोगशाला के तौर पर समझने की प्रवृत्ति बढ़ी है, जहाँ शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य गाँव से पलायन करना है (कुमार, 2014)। हालांकि कुछ विचारक (गुप्ता, 2005 और ठाकुर, 2013) इसे प्रयोगशाला के बजाय अस्थाई छावनी के तौर पर दर्ज करते हैं, खासतौर से शहरों में पलायन की प्रवृत्ति और नियति को देखते हुए। गाँधी और टैगोर के विचारों के जरिए यह बात समझ आती है कि शिक्षा एक संभावना को बनाती है। स्कूल की संस्था के जरिए यह संभावना साकार रूप लेती है, जहाँ हम यह उम्मीद कर सकते हैं कि गाँव की अपनी एक पूर्णता है और हम उस पूर्णता को आधार मानकर शिक्षा की रूपरेखा बना सकते हैं। जहाँ न सिर्फ शिक्षा का चरित्र अहिंसक होगा, बल्कि यह हिंसा जैसी प्रगट घटनाओं और शोषण, वर्चस्व व असमानता जैसी छुपी हुई किन्तु निरंतर चलने वाली प्रक्रियाओं से लड़ने का आधार बनेगी।

शिक्षा के जरिए होने वाला यह काम यद्यपि हर एक बच्चे के स्तर पर होगा लेकिन इस समझ के साथ कि हिंसा से मुकाबला हम सामूहिकता के जरिए ही कर सकते हैं, क्योंकि अहिंसक शिक्षा सामूहिक सहयोग से ही संभव है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि समाज में जो स्थाई हिंसा है उसके केन्द्र में शोषण, वर्चस्व व असमानताएं हैं। हम जिन संस्थाओं से लड़ रहे हैं वे 'वर्ग', 'जाति', 'लिंग' के आधार पर नियमित रूप से शोषण, वर्चस्व व असमानता को बनाये रखती हैं और फैलाती हैं। बच्चे रोज़मर्रा के तौर पर इन अनुभवों से रूबरू होते हैं और उनके बीच रहते हैं। सवाल यह है कि इन अनुभवों के साथ जब ये बच्चे स्कूल पहुँचते हैं तो स्कूल इनका क्या करता है? क्या स्कूल इन अनुभवों को दर्ज करता है? क्या स्कूल के भीतर ऐसी कोई शिक्षण–शास्त्रीय कोशिश होती है कि बच्चों के संज्ञान क्षेत्र को समझा जाए? इसके साथ एक सवाल यह भी है कि शिक्षा इन वर्गीय दूरियों को बढ़ा रही है या बच्चों की सामाजिक अवस्थिति के चलते बने हुए फासलों को कम करने का काम करती है?

यहाँ यह ज़रुरत बनती है कि हम शिक्षा की, खासकर भारत में स्कूली शिक्षा की, एक समझ बनायें। भारतीय संदर्भ में शिक्षा, द्वंद्व और हिंसा के संबंध की आलोचनात्मक समझ हमें शिक्षा पर लिखे ऐसे साहित्य से मिलती है जहाँ वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की सीमाओं को रेखांकित किया गया है, साथ ही विकल्प की रूपरेखा भी प्रस्तुत की गई है।

शिक्षा, द्वंद्व और हिंसा

जैसा कि पहले कहा गया है कि बच्चे जब स्कूल पहुँचते हैं तो वे हिंसा के अनुभवों की एक विरासत के साथ होते हैं। स्कूल हिंसा की इस विरासत पर अक्सर एक अनभिज्ञता दर्शाता है। बच्चों के इन अनुभवों को एक सुलझे हुए ढंग से संबोधित करने के लिए शिक्षक की जिस तरह की तैयारी होनी चाहिए वह देखने को नहीं मिलती। पाठ्यक्रम, शिक्षण-शास्त्र और शिक्षक-प्रशिक्षण, ये वे जगहें हो सकती हैं जिसके जरिए हम उपरोक्त मसले से निपटने के लिए शिक्षा का पुर्नसृजन कर सकते हैं। पर यहाँ इस समझ की भी ज़रुरत है कि हम स्कूल से जो अपेक्षा कर रहे हैं वह काम शिक्षा का है कि नहीं है।

आगे के पन्नों में हम शिक्षा और हिंसा के अनुभवों के संबंधों की एक रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे। यह रूपरेखा हमें टैगोर, गाँधी और फ्रेरे के साहित्य से बनने वाली शिक्षा की भूमिका के संदर्भ में वर्तमान स्कूली शिक्षा की सीमाओं और हिंसा से स्कूली शिक्षा के संबंधों को जानने में मदद करेगी।

सैन्यीकरण बनाम बहुलतावादी पहचान

यहाँ शिक्षा और द्वंद्व को समझने के लिए शिक्षा के लिए बनाई गई संस्थाओं, खास तौर से स्कूल के चरित्र और उससे होने वाली अपेक्षा को समझना होगा। यहाँ हमें ऐसे विमर्श की ज़रुरत पड़ती है जहाँ विश्लेषण का ताना-बाना बच्चों को केंद्र में रखकर बुना गया हो और जिसमें लोकतंत्र के आधारभूत मूल्य संदर्भ बिन्दुओं का काम करते हों। कुमार (1979, 1996) और हॉल्ट (2004, 2006) के विश्लेषण में बच्चों के लिए रची गई शिक्षा की प्रक्रिया और इसके लिए बनाई गई संस्थाओं के हिंसक पहलुओं का तो ब्यौरा मिलता ही है साथ ही हिंसा से निपटने के संदर्भ में शिक्षा की प्रक्रिया के सकारात्मक पहलुओं को समझने का आधार भी मिलता है। यहाँ यह समझने का आधार भी मिलता है कि शिक्षा व्यवस्था की रचना करते हुए जिस समूह या समूहों को शिक्षा देने की परिकल्पना की जाती है उसको दर्ज कैसे किया जाता है? टैगोर ने ज़ोर दिया कि हमें शिक्षा के क्रम में बच्चों की नैसर्गिकता और उनके अनुभवों की विविधता पर ध्यान देना होगा। इसके विपरीत वर्तमान शिक्षा बच्चे को एक बने बनाये ढर्रे में ढालने जैसे एक जैसी आदतें,

भाषा, लिबास, काम और भविष्य की भूमिकाओं को गढ़ने का काम करती है। गौर से देखें तो हमें बच्चों की शिक्षा की प्रक्रिया और युद्ध के लिए तैयार की जाने वाली सेनाओं में कई समानताएं दिखती है। हम बच्चों के 'अनुभवों' को नज़रअंदाज़ कर उनसे एक समरूप उपलब्धि की अपेक्षा रखते हैं। कुमार (2002) इस समस्या के एक पहलु पर टिप्पणी करते हुए बताते हैं कि शिक्षा के जरिए कई छोटी-छोटी पहचानों को मिटाकर शिक्षार्थियों को एक एकल पहचान देने की कोशिश होती है। यह एकल पहचान लगभग उसी ढर्रे पर चलती है जैसा कि युद्ध के लिए तैयार की जाने वाली सेनाओं को तैयार करने के मसले में होता है। स्कूल में अपनाई जाने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं के विश्लेषण के आधार पर कुमार (1979) वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में छात्रों के सैन्यीकरण को रेखांकित करते हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि 'सैन्यीकरण', समूहों की छोटी-छोटी पहचानों के बरअक्स एक 'आदर्श' पहचान को रखती है जबकि बच्चे अपनी बहुलतावादी पहचानों को समाजीकरण की प्रक्रिया में रचते हैं। यहाँ स्कूल की कोशिशों और बच्चों के अनुभवों में एक द्वंद्व दिखता है। यह द्वंद्व उस विशिष्ट पहचान का नतीजा होता है जो ऐतिहासिक और सांस्कृतिक वर्गीकरण के चलते होता है। ऐसे में शिक्षा को बच्चों के उपरोक्त द्वंद्व को सुलझाने वाली या समझाने वाली प्रक्रिया के रूप में देखना, शिक्षा की सकारात्मक परिकल्पना हो सकती है। शिक्षा के जरिए 'एकल पहचान की रचना' का विश्लेषण उन बिन्दुओं की पहचान करना है, जो शिक्षा को द्वंद्व या हिंसा के निवारण का साधन बनने से रोकते हैं।

प्रतियोगिता की संस्था या लोकतांत्रिक स्कूल

एप्पल एवं बीन (2006), हॉल्ट (2006) और नील (2004) को पढ़ते हुए ऐसा लगता है की बच्चों की शिक्षा के क्रम में 'प्रतियोगिता' को एक मूल्य के तौर पर बढ़ावा दिया जाता है। लेकिन यह प्रवृति बच्चों में आक्रामकता को बढ़ाती है, जैसा की पहले ज़िक्र किया गया है कि प्रतियोगिता हिंसा की वजह बनती है। हॉल्ट (2006), नील (2004) और कुमार (2007, 2014) आधुनिकता से उपजे हुए मूल्यों, खासतौर से लोकतंत्र और समता के मूल भाव को, शिक्षा में एक केन्द्रीय जगह देते हैं, आधुनिकता के यह मूल्य उन आदिम प्रवृत्तियों से लड़ने का औजार हैं जिसका ज़िक्र लोरेन्ज ने किया है। आधुनिकता से पनपे हुए ये मूल्य प्रतियोगिता के बर-अक्स समझौते और सहयोग को मानवीय क्रियाओं का आधार बनाते हैं।

एक लोकतांत्रिक समाज में प्रतियोगिता को बढ़ावा देने वाली स्कूल व्यवस्था, दरअसल हमें उन्हीं आदिम प्रवृत्तियों की ओर ले जाती है जिनसे निपटना इस स्कूल

व्यवस्था का एक अनिवार्य उद्देश्य होना चाहिए (डीवी, 2009)। जाति आधारित भारतीय समाज में अलग-अलग समूहों की चेतना में सामंजस्य और सहयोग के लिए अम्बेडकर ने 'इंडोमोसिस' की अवधारणा (मुखर्जी, 2009) का प्रयोग किया, उन्होंने यह रूपक डीवी के साहित्य से लिया। यह रूपक डीवी और अम्बेडकर के विमर्श में शामिल 'अलगाव' और 'जुडाव' की दो विपरीत धारणाओं को एक साथ समझने में मदद करता है। अम्बेडकर के मुताबिक लोकतंत्र में अलग-अलग समूहों में बने रहने के बावजूद, जहाँ उनकी पहचान सुरक्षित रहती है, जुडाव के ऐसे तरीके होते हैं जो एक दूसरे की और सामूहिक चेतना को समृद्ध करते हैं। 'इंडोमोसिस' की अवधारणा विभिन्न समूहों के बीच चेतना के प्रवाह की विभिन्न धाराओं को रेखांकित करने में मदद करती है। स्कूल की शिक्षा एक ऐसी ही धारा है।

'सामाजिक इंडोमोसिस' न होने का कारण समाज का कई असमान समूहों में बंटा होना तो है ही पर इसकी शुरुआत समृद्ध तबके का अपने को अन्य से काट लेने से होता है बजाय इसके कि वह वृहत संबंधों के जरिए समाज के विकास और पुनर्सृजन की सोचें। इस संबंध में स्कूली शिक्षा के अलावा अन्य प्रक्रियाओं पर भी गौर करना होगा। ज़ीरो (1995) सिनेमा और लुगदी साहित्य के जरिए बनने वाली हिंसा की संस्कृति को रेखांकित करते हुए कहते हैं कि हिंसा की बढ़ती हुई चुनौतियों का सामना करने के लिए हमें समीक्षात्मक शिक्षा की उन प्रक्रियाओं को भी शामिल करना होगा जो स्कूल की परम्परागत परिधि मात्र में सीमित नहीं हैं। जैसे कुमार (1998, 2009) शिक्षा की एक अन्य प्रक्रिया, लिखने पढ़ने के कौशल और उससे उपजी पहचान के द्वंद्व को दर्ज करते हैं। इस क्रम में वह बताते हैं कि औद्योगिकीकरण ने सामूहिक मायनों और आत्म-सम्मान के स्रोतों को बिखेर दिया जिसे संभवत: वाचिक संस्कृति मुहैया कराती थी। वाचिक संस्कृति की समाप्ति चेतना के प्रवाह की एक ऐसी धारा की समाप्ति है जो एक बड़े वर्ग को इस प्रक्रिया से बाहर कर देती है।

बच्चों के द्वंद्व और सृजनात्मकता

आलोचनात्मक शिक्षण-शास्त्र के नजरिए से देखें तो शिक्षा की यह भूमिका बनती है कि ऐतिहासिक और सांस्कृतिक प्रतिछायाओं से मुकाबला करने के लिए बच्चों के समाजीकरण में शामिल अनुभव को स्कूल के जरिए साकारात्मक तरीके से गढ़ा जाये (ज़ीरो, 1983)। इस विमर्श में वह स्कूल के भीतर, शिक्षा की प्रक्रिया में अन्तर्निहित द्वंद्व पर सवाल उठाते हैं। आदर्श स्थिति में स्कूल को उन प्रतिछायाओं को नए तरीके से गढ़ना चाहिए जो

सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक अनुभव के संचय के रूप में बच्चों के मनोजगत में मौजूद रहती हैं और द्वंद्व की वजह बनती हैं।

कुमार (1979, 1991) समाज में मौजूदा प्रभुत्वशाली मूल्यों, प्रतीकों, चिन्हों और सामूहिक व्यवहार के माध्यम से उस राजनीति का ब्यौरा देतें हैं जो बच्चों के सामाजीकरण के साथ रची-बुनी गई होती है। अलग-अलग सांस्कृतिक प्रतीक चिन्हों के माध्यम से बच्चों के परिवेश में रह रहे वयस्क उनके समक्ष चुनिन्दा मूल्यों और मानकों की रचना करते हैं। ये मूल्य और मानक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक जड़त्व का पुनर्उत्पादन करते हैं, जिसमें बच्चे को उसकी चुनिन्दा पहचान आत्मसात करने पर बल दिया जाता है, और उन चुनिंदा पहचानों की तयशुदा भूमिकाओं से इतर अन्य व्यवहारों को एक भ्रम या द्वंद्व की स्थिति के रूप में रखा जाता है। यहाँ स्कूल से यह उम्मीद की जाती है कि वह बच्चों को ऐसे अनुभव दे जहाँ वे तार्किक ढंग से अपने अनुभवों की पुनर्रचना करें और अपनी पहचान को ज़्यादा तार्किक और बहुलतावादी परिप्रेक्ष में गढ़ सकें। जबकि ऐसा लगता है की स्कूल ऐसे तर्कशास्त्र को मुहैया कराने के बजाय कई बार इस द्वंद्व को पोषित करने का ही काम करता है ।

द्वंद्व की उपरोक्त प्रकृति को समझने के लिए इतिहास और उसके शिक्षण का उदाहरण लेते हैं। अतीत का ज्ञान और उसका प्रचलित प्रयोग एक ऐसा 'औजार' है जो बड़े सामूहिक विचारों की रचना का साधन बनता रहा है। बच्चों के लिए अतीत का यह ज्ञान अव्यक्त या अलिखित तौर पर समाज में मौजूद होता है। वहीं दूसरी ओर व्यक्त और लिखे इतिहास के रूप में स्कूल के माध्यम से यह बच्चों तक पहुँचता है और ये दोनों व्यक्त और अव्यक्त मिलकर उस समाज के लोगों के व्यवहार, विश्वास, रुझान और प्रचलन को एक खास-तरीके से ढालते हैं। जहाँ तक समाज में मौजूद अनकहे ज्ञान का सवाल है, उसके बारे में कुमार (2002) मानते हैं कि ये ज्ञान बच्चों के आरंभिक सामाजीकरण के माध्यम से उनके पास तक पहुँचते हैं। जब बच्चा सामूहिक अतीत के अनकहे ज्ञान के जरिए समाजीकृत हो रहा होता है, तो इसका जो प्रभाव पड़ता है, उसमें यह गुंजाइश नहीं होती कि उसका कोई चिंतन और विश्लेषण किया जाए'' (पृ. 17)। अतीत का यह ज्ञान लोगों की सामूहिक स्मृतियों, सामाजिक और धार्मिक अनुष्ठानों, रोज़मर्रा के भाषायी प्रयोगों और प्रतीक चिन्हों के माध्यम से उस परिवेश में मौजूद रहता है, जहाँ बच्चे का सामाजीकरण हो रहा होता है।

अतीत को लेकर बच्चों के ज्ञान को कुमार (2002) दो भागों में विभक्त करके देखते हैं। पहला, जो प्रतीकों, आदतों और व्यवहारों के नियमों के रूप में मौजूद होते हैं। इस

प्रकार के अनकहे अतीत के तत्व, बच्चे को अपने परिवेश में मौजूद उन बड़ों से मिलते हैं जो एक खास धार्मिक, सांस्कृतिक समुदाय का हिस्सा होते हैं। स्कूल जाने से पहले बच्चा इन तत्वों के माध्यम से अपनी एक विशेष पहचान गढ़ लेता है। दूसरा, स्कूली इतिहास, जिसकी रचना विशिष्ट उद्देश्यों के तहत होती रही है। ज़ीरो (1995) न सिर्फ अतीत, बल्कि वर्तमान की भी रचना में सूचना के अन्य स्रोतों जैसे लुगदी साहित्य, सिनेमा, दूरदर्शन की भूमिकाओं को भी दर्ज करतें हैं।

आगे बढ़ने से पहले बच्चों के संदर्भ में दो तथ्यों पर गौर करते हैं, जिसे फ्रॉयड और चॉम्स्की ने दर्ज किया है।

1. फ्रायड (1905) के मुताबिक बच्चे के अवचेतन का निर्माण शुरुआती 6 वर्षों में हो जाता है।
2. चॉम्स्की (2000) के मुताबिक दो से चार वर्ष के बीच में बच्चा अद्भुत गति से भाषा सीखता है और इस दौरान एक भाषा की लगभग पूरी संरचना अर्जित कर लेता है।

एक तीसरी अवस्थिति भी है। इस अवस्थिति का विस्तार इस अध्याय के पहले हिस्से में ज़िक्र किये गये युंग के सिद्धांतों से मिलता है जहाँ यह कहने का आधार मिलता है कि द्वंद्व के अनुभव और उसका संचय बच्चों के परिवेश में मौजूद सामूहिक अवचेतन का एक निर्णायक हिस्सा होता है। प्रतिछाया के रूप में मौजूद सामूहिक अवचेतन का यह भाग न सिर्फ बच्चों के व्यवहार को नियंत्रित करता है बल्कि दुनिया को लेकर उनकी समझ को भी प्रभावित करता है। कुमार जिस अव्यक्त अतीत को इंगित करते हैं और जिसे वो सामूहिक स्मृति, सांस्कृतिक अनुष्ठान, सामाजिक व्यवहार और भाषायी प्रचलनों में दर्ज देखते हैं वह काफी हद तक युंग द्वारा प्रस्तुत आद्यरूप से मेल खाता है।

पर कृष्ण कुमार इन अवस्थितियों के जरिए बच्चे की पहचान के उस द्वंद्व को रखते हैं जिसे बच्चा स्कूल आने से पहले गढ़ चुका होता है। ''जब तक बच्ची स्कूल पहुँचती है वह प्राथमिक समाजीकरण की बदौलत एक समाज विशेष की बुनियादी और गहरी छाप को अपना चुकी होती है'' (2014, पृ. 20)। इसके बाद स्कूल की भूमिका शुरु होती है। जहाँ वे बताते हैं कि– आधुनिक शिक्षा व्यवस्था अपने घोषित आदर्शों के विपरीत वास्तविकता में बच्चों को कोई ऐसा बौद्धिक माहौल उपलब्ध नहीं करा पाती जो उन बच्चों को उनके विशिष्ट समाजीकरण और उससे उपजे द्वंद्व को तार्किक ढंग से समझने में मदद करे, बल्कि स्कूली शिक्षा राज्य के निहित उद्देश्यों की पूर्ति का साधन मात्र बन जाती है।

इसका मतलब यह हुआ कि आधुनिक शिक्षा संस्थायें बच्चों के समाजीकरण और उनके अनुभवों से उपजे हुए द्वंद्व से निपट नहीं पाती हैं। खासतौर से बच्चा जब ऐसी जाति या समुदाय से संबंध रखता है जो ऐतिहासिक कारणों से न सिर्फ समाज के हाशिये पर रह गये बल्कि स्कूल के ज्ञान में उनकी भागीदारी भी हाशिये पर ही रहेगी। यहाँ पर सामाजिक पुनरुत्पादन का एक चक्र दिखता है जिसमें समुदाय विशेष की पहचान, संस्थाओं और आधिकारिक ज्ञान के चलते पुनरुत्पादित होती है, जिसमें वर्चस्वशाली तबके की पहचान का पोषण होता है और हाशिये के लोगों की रूढ़ पहचान का पुनर्बलन।

अहिंसा का व्याकरण : स्कूली शिक्षा का संभावनाशील चरित्र

मनुष्य की प्रवृत्तियाँ मानव समाज को हिंसा की ओर ले जाती हैं। मानव अपनी चेतना के जरिए इन प्रवृत्तियों से पार पाता है। जहाँ व्यक्ति न सिर्फ इस दुनिया में होता है बल्कि उसका हिस्सा होता है। अहिंसा महज एक ख्याल नहीं बल्कि एक जीवंत शैली है। शिक्षा हिंसा से निपटने का साधन हो सकती है अगर हम अनुभवों की बहुलता को स्कूली शिक्षा की प्रक्रिया में शामिल करें। 'दूसरों' की रचना के बगैर यह काफी मुश्किल है कि हम 'स्व' की रचना कर सकें। यह कहना कठिन है कि द्वंद्व हमेशा हिंसा का कारण बनते हैं। एक ओर विपरीत हितों की टकराहट हिंसा की वजह बनती है तो दूसरी ओर हिंसा को बुराई से निपटने के एक उपाय के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिसमें यह मान्यता निहित है कि जब यह बुराई अपनी पूर्णता तक पहुँच जाती है तो वहाँ केवल हिंसा उसका उपाय होती है। आदिकालीन कथाओं के अलावा 'आधुनिकता' के विमर्श में भी हिंसा एक उपाय के रूप में प्रगट होती है जहाँ 'अच्छाई' और 'बुराई' के ध्रुवों को रचकर हिंसा को जायज ठहराने की कोशिश होती है। हिंसा की अनिवार्यता के मिथक को न सिर्फ महागाथाओं द्वारा स्थापित किया गया, बल्कि कई विचारधाराओं में भी इसकी अनिवार्यता को दर्ज किया गया।

हिंसा की उपरोक्त स्थिति से निपटने के लिए फ्रेरे (1996) 'मनुष्य बनाने वाले शिक्षाशास्त्र' की बात करते हैं। मनुष्य बनाने वाले शिक्षाशास्त्र में शिक्षा की पद्धति ऐसा औजार नहीं रहती, जिससे शिक्षक छात्रों के साथ कोई चालबाजी कर सके क्योंकि इसकी पद्धति स्वयं छात्रों की चेतना को व्यक्त करती है। इसमें शिक्षक और छात्र दोनों यथार्थ के प्रति संकल्पशील होते हैं साझे चिंतन और कर्म के जरिए वे ज्यों ही यह ज्ञान प्राप्त करते हैं, त्यों ही वे पाते हैं कि वे इसके स्थाई पुर्नसृजक भी हैं। फ्रेरे शिक्षा पर

टिप्पणी करते हुए 'अमानुषीकरण' की 'ऐतिहासिक वास्तविकता' को रेखांकित करते हैं। वे अमानुषीकरण की अवस्थिति के संदर्भ में उत्पीड़क और उत्पीड़ित दोनों के भीतर आये विकार का ज़िक्र करते हैं। वे इन दोनों के बीच के द्वंद्व में एक संभावना देखते हैं और कहते हैं कि ''उत्पीड़ितों का महान मानवतावादी और ऐतिहासिक कार्य भार है: स्वयं को और साथ ही अपने उत्पीड़कों को मुक्त करना'' (फ्रेरे, 1996, पृ. 26)। इस क्रम में वह आगाह करते हैं कि उत्पीड़ितों में मुक्ति का प्रयास करने के बजाय स्वयं उत्पीड़क अथवा, 'उप-पीड़क' बनने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। वे मानते हैं कि उत्पीड़न से मुक्ति उत्पीड़कों द्वारा प्रस्तुत नमूनों के आधार पर नहीं हो सकती बल्कि हमें 'मुक्ति के संघर्ष में संलग्न' मनुष्यों के शिक्षाशास्त्र को रचना होगा। इस मायने में वे उत्पीड़न के कारणों की तह तक जाते हैं और उस 'शिक्षा शास्त्र' की सीमाओं से आगाह करते हैं जो 'उत्पीड़कों के अहंवादी' हितों से आरम्भ होता है। जो अपने उदारता के लबादे में 'उत्पीड़ितों को परोपकार' की वस्तु बना देता है।

टैगोर, गाँधी और फ्रेरे के विचारों से गुजरते हुए ऐसा लगता है की मानव चेतना के विकास और अहिंसा की व्यापक समझ से हम हिंसा की स्थितियों को टाल सकते हैं। स्कूली शिक्षा, इन संभावनाओं को साकार रूप दे सकती है पर उसके लिए हमें उपरोक्त दर्शन के मद्देनज़र वर्तमान शिक्षा प्रणाली की सीमाओं को समझना होगा। प्रसाद (1998) मानते हैं कि गाँधी एक शांतिपूर्ण समाज चाहते थे और टैगोरे सृजनात्मक समाज, लेकिन केवल सृजनात्मक समाज ही शांतिपूर्ण हो सकता हैं दंड और पुरस्कार का सिद्धांत सृजनात्मकता के बजाय उपलब्धि पर ज़ोर देता है और यह कई रूपों में डर का माहौल बनाता है, वे मानतें है कि हमें सृजनशील गतिविधि की जरिए जिन चीज़ों के पार जाना है, डर उसका शुरुआती बिन्दु है। वे मानतें है की बगैर सृजनात्मक समझ के सूचनाओं को रटने का कोई महत्व नहीं। उनका मानना है की केवल तार्किकता मानव व्यवहार का आधार नहीं होती और इसकी पूर्णता सृजनशील और कलात्मक गतिविधियाँ ही कर पाती हैं।

गाँधी के मुताबिक अहिंसा के बिना सत्य की खोज और प्राप्ति असंभव है, वे इस पर ज़ोर देते हैं कि अहिंसा एक जीवनशैली है न कि किसी मौके पर इस्तेमाल किया जाने वाला कोई विशेष व्यवहार। टैगोर मानव जीवन की व्याख्या 'चिड़ियों के दो बार जन्म लेने' के रुपक के जरिए करते हैं पहला जब वह अपने अण्डे से बाहर आते हैं और दूसरा जब वे मुक्त आकाश में स्वतंत्र होते हैं। इस मायने में वे मानव में परिवर्तन की

कल्पना करते हुए बताते हैं दूसरा जन्म जैविक प्रवृत्तियों से पार पाने के क्रम में 'सत्य' और 'शुभ' के प्रगटीकरण से होता है।

सैद्धान्तिक तौर से देखें तो ऐसा लगता है कि शिक्षा के जरीये द्वंद्व व हिंसा की स्थितियों का मुकाबला किया जा सकता है, पर इसके लिए न सिर्फ हमें द्वंद्व और हिंसा की स्थितियों को बच्चों के संदर्भ में समझना होगा बल्कि ऐसे शिक्षण शास्त्र की कल्पना करनी होगी जो 'स्थायी हिंसा' को कम से कमतर करे और 'तात्कालिक हिंसा' के रूप में उसके प्रकटीकरण को रोके।

संदर्भ

अम्बेडकर, बी. आर. (1979). एन्निहिलेशन ऑफ कास्ट विद ए रिप्लाई टू महात्मा गाँधी. वी. मून (सं), *डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर्स राइटिंग्स एंड स्पीचैस* (वाल्यूम 1) में. बम्बई : एजुकेशन डिपार्टमेंट, गवर्नमेंट ऑफ महाराष्ट्र. (मूल प्रकाशन 1936)

एन.सी.ई.आर.टी. (2005). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005.* नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद.

एन.सी.ई.आर.टी. (2006). *शांति के लिए शिक्षा : राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र.* नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद.

एप्पल, एम.डब्ल्यु. एवं बीन, जे.ए. (2006). इंट्रोडक्शन : लेशन फ्रॉम द चॉक फेस. एम. डब्ल्यु. एप्पल एवं जे. ए. बीन (सं.), *डेमोक्रेटिक स्कूल* में (पृ. 7–16). भोपाल : एकलव्य.

ऐजेमेर, जी. (2000). इंट्रोडक्शन. जी. ऐजेमेर, एवं जे. के. अब्बिंक (सं.), *मीनिंग ऑफ वायलेंस: सिम्बोलिस्म एंड स्ट्रक्चर इन वायलेंट प्रैक्टिस* में, (पृ. 7–23). बर्ग : ऑक्सफोर्ड.

कांतिशाह. (2011). *हिन्द स्वराज : एक अध्ययन.* अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर.

कुमार, के. (1991). *पॉलिटिक्ल एजेण्डा ऑफ एजुकेशन : ए स्टडी ऑफ कोलोनालिस्ट एण्ड नेशनालिस्ट आडिया.* नई दिल्ली : सेज प्रकाशन.

कुमार, के. (1996). *लर्निंग फ्रॉम कन्फलिक्ट.* नई दिल्ली : ओरिएण्ट लॉन्गमैन.

कुमार, के. (2002). *प्रिजूडिस एण्ड प्राइड : स्कूल हिस्ट्रीज आफॅ द फ्रीडम स्ट्रगल इन इंडिया एण्ड पाकिस्तान.* नई दिल्ली : पेंइगुईन बुक्स.

कुमार, के. (2007). *बेटल फॉर पीस.* नई दिल्ली : पेंइगुईन बुक्स.

कुमार, के. (2009). *व्हाट इज वर्थ टीचिंग.* नई दिल्ली : ऑरिएंट ब्लैकस्वान.

कुमार कृ. (1979/1996). *राज समाज और शिक्षा.* नई दिल्ली : राजकमल. (मूल प्रकाशन, 1979)

कुमार, कृ. (1998). *शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व.* नई दिल्ली : ग्रंथ शिल्पी.

कुमार, कृ. (2014). *चूड़ी बाज़ार में लड़की.* नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.

कुमार के. (2014). रुरलिटी, मूडर्निटी एंड एजुकेशन. *इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली,* 49(22), 39–43.

गाँधी, एम.के. (1953). *टू स्टूडेंट्स* (संपादन बी. कुमारप्पा). अहमदाबाद : नवजीवन पब्लिशिंग हाउस.

गाँधी, मो.क. (1949). *हिन्द स्वराज.* अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर.

गाँधी, मो.क. (2008). *अहिंसा की ताकत.* (संकलन–संपादन पी. कुमार). वाराणसी : सर्व सेवा संघ प्रकाशन.

गाँधी, मो.क. (1955). *सर्वोदय* (संपादन भा. कुमारप्पा). अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर.

गाँधी, मो.क. (1955ए). *नई तालीम की ओर.* अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर.

गुप्ता, डी. (2005). विदर द इंडियन विलेज, कल्चर एंड एग्रीकल्चर इन 'रूरल' इंडिया. *इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली,* 40(08), 751–757.

चॉम्स्की, एन. (2004). 9/11, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

चॉम्स्की, एन. (2000). *आर्किटैक्चर ऑफ लैंग्वेज.* (सम्पादन एन. मुखर्जी, बी. नारायण, आर.के. अग्नीहोत्री). नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस.

जीरो, हे. (2014). *संस्कृतिकर्मी और शिक्षा की राजनीति.* दिल्ली : ग्रंथ शिल्पी.

जीरो, एच.ए. (1983). *थियोरी एन्ड रेसिसटेन्स इन एजुकेशन.* मैसेचूसेएट्स : बर्जीन एन्ड गारवे पब्लिशर्स.

जीरो, एच.ए. (1995). *पल्प फिक्शन एंड द कल्चर आफ वायलेंस.* हार्वर्ड एजुकेशनल रिव्यु, 65(2), 299–314.

टैगोर, आर.एन. (1961). *टुवर्ड्स यूनिवर्सल मैन.* कोलकाता : एशिया पब्लिशिंग हाउस.

टैगोर, आर.एन. (1986). *शिक्षा.* दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन.

टैगोर, आर. (1931). द *रिलीजन ऑफ मैन.* न्यूयॉर्क : द मैकमिलन कंपनी.

ठाकुर, एम. (2014). *डंडीयन विलेज ए कान्सेप्टुयल हिस्ट्री.* जयपुर : रावत पब्लिकेशन.

डीवी. जे. (2009). फोर्स, वायलेंस एण्ड लॉ एण्ड फोर्स एण्ड कोर्डरस्न.वी. बुफाची (सं.), *वायलेंस ए फिलासिफिकल एनथोलॉजी* में (पृ. 5.–16). लंदन : पॉलग्रेव मैकमिलन.

डेविस, एल. (2004). *एजुकेशन एण्ड कन्फलिक्ट.* लन्दन : रटलेज फादर.

ताविल, एस. एवं वहार्ले, ए. (2004). *एजुकेशन, कॉनफ्लिक्ट एन्ड सोशल कोहेशन.* जेनेवा : युनेस्को.

दास, वी. (1985). *'एन्थ्रोपोलोजीकल नॉलेज एण्ड कलेक्टिव वायलेन्स : द राईट्स इन दिल्ली, नवम्बर 1984'*, एन्थ्रोपोलोजी टुडे, 1(3), 4–6.

दास, वी. (1987). *'द एन्थ्रोपोलोजी ऑफ वायलेन्स एण्ड द स्पीच ऑफ विक्टीम्स'*, एन्थ्रोपोलोजी टुडे, 3(4), 11–13.

नील ए.एस. (2004). समरहिल, भोपाल: एकलव्य प्रकाशन.

परेल, ए.जे. (1997). एडिटर्स इंट्रोडक्शन. ए. जे. परेल (सं), *हिन्द स्वराज एंड अदर राईटिंग्स में* (पृ. xiii–lxiii). नई दिल्ली : कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

प्रसाद, अ. (1974). *ग्रामीण हिंसा: एक अध्ययन.* वाराणसी : सर्व सेवा संघ.

प्रसाद, दे. (1998). *शिक्षा का वाहन कला.* नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट.

फुको, एम. (1961). *मेडनेस एण्ड सिविलाइजेशन ए हिस्ट्री ऑफ रीजन.* लंदन : रटलेज.

फुको, एम. (1998). *दि विल टू नॉलेज.* नई दिल्ली : पेंगुइन.

फ्रॉयड, एस. (2014). *मनोविश्लेषण* (अनु. दे. कुमार), दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्स. (मूल प्रकाशन, 1905).

फ्रेरे, पा. (1996). *उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र* (अनु. र. उपाध्याय). नई दिल्ली : ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड.

भट्टाचार्य, एस (सं.). (2005). *महात्मा और कवि (गाँधी और टैगोर के बीच 1915-1941 तक पत्र व्यवहार और विचार-विमर्श)* (अनु. ता. गिरि). नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया.

भारत सरकार (2007). *स्टडी ऑफ चाइल्ड एब्यूज.* नई दिल्ली : महिला व बाल विकास मंत्रालय.

मुखर्जी, ए. पी. (2009). *बी.आर. अम्बेडकर, जाफन डीवी एंड द मिनिंग आफ डेमोक्रेसी.* न्यू लिटरेरी हिस्ट्री, 40(2), 345 -370.

युंग, सी.जी. (2001). *साइकोलॉजी ऑफ दि अनकॉन्शियस.* न्यु जर्सी : रटलेज.

युंग, सी.जी. (2003). *फोर आर्कटाईप्स.* लन्दन : रटलेज.

यूनाइटेड नेशन (2005). *द यूनाइटेड नेशन स्टडी ऑन द वायलेंस अगेन्स्ट चिल्ड्रन.* (Retrieved from: www.unicef.org/violencestudyreport/su-violencestudy_enpdf).

रैपोपोर्ट, एन. एवं आवरिंग, जे. (2004). *सोशल एण्ड कल्चरल एनथोपोलॉजी.* लन्दन : रटलेज.

रैपोपोर्ट, ए. (1995). *द ओरिजन ऑफ वॉयलेन्स - अप्रोच टू द स्टडी ऑफ कन्फ्लिक्ट.* न्यू जर्सी: ट्राजेंक्शन पब्लिशर्स.

लोरेंज, के. (1963). *ऑन अग्रेशन.* लन्दन : रटलेज.

सर्कस. (2006). *छह वर्ष से कम के बच्चों पर फोकस.* नई दिल्ली : सिटीजन्स इनिशिएटिव्ज फार दि राइट्स आफ चिल्ड्रेन अंडर सिक्स.

स्ट्रॉस, सी. एल. (1963/2002). *मिथ एन्ड मिनिंग.* लन्दन : रटलेज.

होल्ट, जॉ. (2004). *बच्चे असफल क्यों होते हैं* (अनु. पू. या. कुशवाहा). भोपाल : एकलव्य प्रकाशन.

होल्ट, जॉ. (2005). *बचपन से पलायन* (अनु. पू. या. कुशवाहा). भोपाल : एकलव्य प्रकाशन.

होल्ट, जॉ. (2006). *असफल स्कूल* (अनु. अ. गुप्ता). भोपाल : एकलव्य प्रकाशन.

होल्ट, जॉ. (2007). *शिक्षा की बजाय : चीजों को बेहतर ढंग से करने के तरीके.* भोपाल : एकलव्य प्रकाशन.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 2, अगस्त 2015

शोध टिप्पणी/संवाद

माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृति एवं मूल्यों का अध्ययन

आर.पी. पाठक* एवं **अमिता पाण्डेय भारद्वाज****

भूमिका

शिक्षक के व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष उसकी अभिवृत्तियां हैं। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य समाज की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुरूप बालकों के व्यवहार को परिमार्जित करना है व्यवहार के विभिन्न अवयवों में अभिवृत्तियां अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। किसी धरणा, मानसिकता, चिन्तन अथवा विचार के प्रति व्यक्ति का व्यवहार उसकी अभिवृत्तियों पर निर्भर करता है। व्यवहार ही नहीं व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व भी उसकी अभिवृत्तियों के अनुकूल ही ढलता है। व्यक्ति जो कुछ सीखता है और आदतों आदि को ग्रहण करता है, वह सभी उसकी अभिवृत्तियों द्वारा प्रभावित होती हैं। अभिवृत्ति व्यक्तित्व की उन विशेषताओं की ओर इशारा करती है, जिसके द्वारा व्यक्ति किसी वस्तु, व्यक्ति या प्रक्रिया के बारे में अपने विचार रखकर प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करता है। शिक्षक के सामने विभिन्न प्रकार की समस्याएँ आती हैं तथा वह ही उसका समाधान भी करता है। यह प्रवृत्ति शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों पर आधरित होती है।

अभिवृत्ति तथा मूल्य

अभिवृत्ति तथा मूल्य दोनों ही शब्द किसी व्यक्ति के अन्य व्यक्तियों, वस्तुओं या परिस्थितियों से संबंधित मानसिक तत्त्वों को प्रकट करते हैं। अभिवृत्ति आत्मगत होती है, जबकि मूल्य वस्तुगत होते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अभिवृत्ति के निर्धारण में व्यक्ति के 'स्व' का अधिक महत्व होता है, जबकि मूल्य के निर्धारण में संबंधित वस्तु या व्यक्ति का अधिक महत्व होता है, अभिवृत्ति किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति की जाने वाली

* *संकाय प्रमुख एवं विभागाध्यक्ष, श्री ला.ब.शा.रा. संस्कृतविद्यापीठ, मानित विश्वविद्यालय, नई दिल्ली*
E-mail:pathakoham@gmail.com
** *सह-आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री ला.ब.शा.रा. संस्कृतविद्यापीठ, मानित विश्वविद्यालय, नई दिल्ली;*
Email:- amitakshi06@rediffmail.com

प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति है। जब कोई अभिवृत्ति लक्ष्य बन जाती है, तो वह मूल्य का रूप ध ारण कर लेती है। इस प्रकार अभिवृत्ति मूल्य का आधार होती है।

आचार्य एवं शिक्षक की भूमिका

मूल्यों को स्थापित करने वाला आचार्य एवं गुरु ही होता है। किन्तु वर्तमान में गुरु का स्वरूप पूर्णत: परिवर्तित हो गया है। आज गुरु अपने गौरव को पूर्णत: खोता जा रहा है। अल्पज्ञानी व्यक्ति भी शिक्षक बन जाता है, शिक्षक बनकर अपने अल्पज्ञान का भी क्रय-विक्रय करता है। धन की लिप्सा तथा अकर्मण्यता ने वर्तमान में गुरु के स्वरूप को परिवर्तित कर दिया है। अकर्मण्यता शिक्षण के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति का द्योतक है। यह नकारात्मक अभिवृत्ति उसे शिक्षण व्यवसाय से विमुख कर रही है। कहा जा सकता है कि शिक्षक अपने मूल धर्म अर्थात् शिक्षण कार्य के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं रख पा रहे हैं। संत कवियों तथा प्राचीन ग्रन्थों की दृष्टि में गुरु को ज्ञान का प्रदाता माना गया है। उनके मुख से निकली वाणी ही शिष्य के जीवन को परिवर्तित कर देती थी। गुरु रूपी दीपक के बिना मनुष्य अर्थात् शिष्य के हृदय का अज्ञान रूपी अंधकार नष्ट नहीं हो सकता। भक्ति काल में नीति, आचरण, भक्ति, प्रेम आदि को गुरु के मुख से निकले शब्दों द्वारा शिष्यों ने संग्रहित किया।

आज का युवक गुरु की प्रेरणा तथा निर्देशन के अभाव में भटक रहा है। कबीर की यह उक्ति आज भी प्रासंगिक होती है कि -

''जीव अधम औ कुटिल है, कबहूँ नहिं पतियाय।
ता कौ औगुन मेटि के, सतगुरु होत सहाय।।''

उपरोक्त विवेचन से ज्ञान होता है कि गुरु का रूप समयानुरूप परिवर्तित होता गया। पूर्वकाल में गुरु के पास जाने पर शिष्य भयभीत रहता था, किन्तु वर्तमान में शिष्यों के अन्तर्मन में गुरुओं का सम्मान कम हुआ है। गुरु स्वयं भी अपने प्रति इस प्रकार के व्यवहार के लिये जिम्मेदार हैं। मूल्यों का ह्रास, शिक्षण कार्य के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति आदि इसके कारण हैं। प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति तथा मूल्यों का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया है।

अध्ययन का औचित्य

भारतीय समाज मूल्य संकट से ग्रसित है। भारत में नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों का तेजी से पतन होता जा रहा है। वर्तमान समय में वृद्धों का अनादर, नियमों की अवहेलना,

चरित्रहीनता, अत्याचार, भ्रष्टाचारयुक्त व्यवहार सहज रूप से देखने को मिल जाता है। भारतीय समाज का शायद ही ऐसा कोई पक्ष होगा जो इस अनैतिक पतन से अछूता रह गया हो। अत: आज विद्यालयों द्वारा मूल्यपरक शिक्षा देने का प्रयास किया जा रहा है ताकि विद्यार्थी प्रारम्भ से ही इस बात को समझे कि सुरक्षा में जो लाभ है वह असुरक्षा एवं विनाश में नहीं। शिक्षकों को चाहिए कि वे विद्यार्थियों में मूल्य, निर्णय करने की क्षमता एवं योग्यता का विकास करें। यदि शिक्षक ऐसा करने में असमर्थ रहता है तो इसके अस्तित्व का कोई लाभ नहीं। प्राचीन काल में शिक्षक अपने गृहस्थ आश्रम को त्याग कर एकान्त में अपने शिष्यों को शिक्षा देते थे और उन्हें जीवन मूल्यों से अवगत कराते थे तथा समय-समय पर उनकी परीक्षा भी लेते थे। प्राचीन कालीन शिक्षा व्यवस्था इसका उदाहरण है। यह परीक्षा कुछ प्रश्नों के उत्तरों तक ही सीमित न होकर व्यावहारिक भी होती थी तथा पूरी तरह आश्वस्त होने के बाद यह छात्र को अपने गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने की अनुमति प्रदान करते थे, परन्तु वर्तमान परिवेश में गुरु अपने मूल कर्तव्य से भटककर सिर्फ 'वेतन' तक ही सीमित हो गए हैं।

एक अच्छे शिक्षक का चरित्रवान् होना भी आवश्यक है क्योंकि सच्चरित्रता वह कुंजी है जिससे प्रत्येक कठिन कार्य को सरल बनाया जा सकता है। शील संवर्धन में अध्यापक का कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। अध्यापन वृत्ति अन्य वृत्तियों से भिन्न है। अन्य वृत्तियों में किसी व्यक्ति की वृत्ति कैसी भी हो, इससे उसकी कार्यशैली पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, परन्तु एक अध्यापक को अपने व्यक्तिगत जीवन को परिशुद्धता से निभाना पड़ता है। शिक्षक विद्यार्थी के वर्तमान व भविष्य को बनाने का आधार होता है और वह आजीवन उसका अनुकरण करता है। अत: यदि बाल-शिक्षा ही मूल्यों से परिपूर्ण हो तो बालक आगे चलकर समाज का कर्णधार बनता है और विद्यार्थी के लिये जीवन आदर्श बन जाता है।

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर समाज द्वारा बनाए गए नियमों के अनुरूप अपने आप को ढालता है तथा कार्य करता है। अत: स्पष्ट है कि शिक्षक का अपना व्यक्तिगत आयाम कुछ भी नहीं होता है बल्कि वह समाज द्वारा निर्धारित मानकों के आयामों का पालन करता है तथा नवागन्तुकों को प्रकाश स्तम्भ का श्रोत बनाता है। उसके अन्दर नैतिक और सामाजिक मूल्य, उसकी शिक्षण अभिवृत्ति एक ऐसे मार्ग का निर्माण करती हैं जो मानवीय कल्याण के रथ को मंजिल तक पहुँचा सके, परन्तु कभी-कभी अध्यापक स्वयं दिग्भ्रमित हो जाने की स्थिति में आ जाता है तो

वह अपने आप को आगे बढ़ने में असमर्थ पाता है। लैंगिक भेद जैसे सम्प्रत्यय शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों पर कोई प्रभाव डालते हैं तथा भौतिक एवं सामाजिक वातावरण का प्रभाव क्या शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों पर पड़ता है? क्या शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों से शिक्षकों का व्यवहार प्रभावित होता है? आदि प्रश्नों के उत्तर किसी अध्ययनकर्त्ता के लिये स्वाभाविक है। शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करना ही एक शिक्षा से जुड़े अध्ययनकर्त्ता के मन में सवाल उठना स्वाभाविक एवं उचित है तथा शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों जैसे महत्त्वपूर्ण चरों पर लैंगिक भेद, ग्रामीण एवं शहरी वातावरण का प्रभाव पड़ता है, इसको जानना मानवीय कल्याण के लिये भी सकारात्मक है।

अध्ययन से उभरने वाले प्रश्न

1. क्या माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में भिन्नता है?
2. क्या माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के मूल्यों में भिन्नता है?
3. क्या विभिन्न भौतिक सामाजिक परिवेश (ग्रामीण एवं शहरी) के माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में भिन्नता है?
4. क्या विभिन्न भौतिक सामाजिक परिवेश (ग्रामीण एवं शहरी) के माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के मूल्यों में भिन्नता है?
5. क्या लैंगिक भिन्नता के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में भिन्नता है?
6. क्या लैंगिक भिन्नता के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के मूल्यों में भिन्नता है?
7. क्या शैक्षिक अनुभव के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में भिन्नता है?
8. क्या शैक्षिक अनुभव के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के मूल्यों में भिन्नता है?

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

2. लैंगिक भिन्नता के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
3. शैक्षिक अनुभव के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
4. सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के मूल्यों का अध्ययन करना।
5. लैंगिक भिन्नता के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के मूल्यों का अध्ययन करना।
6. शैक्षिक अनुभव के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के मूल्यों का अध्ययन करना।
7. माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ

प्रस्तुत अध्ययन की परिकल्पनाएँ इस प्रकार हैं -

1. सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं है।
2. लैंगिक भिन्नता के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं है।
3. शैक्षिक अनुभव के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं है।
4. सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है।
5. लैंगिक भिन्नता के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है।
6. शैक्षिक अनुभव के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है।

7. माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन-विधि

प्रस्तुत अध्ययन कार्य में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या

प्रस्तुत अध्ययन में राजस्थान राज्य के अन्तर्गत भरतपुर, अलवर एवं सवाई माधेपुर जिलों में स्थित माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों को जनसंख्या के रूप में सम्मिलित किया गया है।

न्यादर्श

न्यादर्श का चयन करने के लिये अध्ययनकर्त्ता ने भरतपुर, अलवर एवं सवाई माधेपुर जिले के विद्यालयों का चयन किया है। प्रत्येक जिले से 20 विद्यालयों का चयन करते हुए 60 विद्यालय लिए गए हैं। इन 60 विद्यालयों में 30 सरकारी विद्यालयों में से प्रत्येक 15 विद्यालय शहरी क्षेत्र के एवं 15 विद्यालय ग्रामीण क्षेत्र के लिए गए। इसी प्रकार 30 गैर-सरकारी विद्यालयों में से 15 विद्यालय शहरी क्षेत्र के एवं 15 विद्यालय ग्रामीण क्षेत्र के लिए गए। प्रत्येक विद्यालय से 10 शिक्षकों का चयन करते हुए कुल 300 महिला एवं 300 पुरुष शिक्षकों को न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया है।

चर

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता ने चर के रूप में निम्नांकित चरों का चयन किया है–

(अ) स्वतंत्र चर

1. माध्यमिक स्तर के विद्यालय
2. भौतिक सामाजिक परिवेश
3. लैंगिक भिन्नता (पुरुष एवं महिला शिक्षक)

(ब) आश्रित चर

1. शिक्षण अभिवृत्ति
2. मूल्य

उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन को पूरा करने हेतु अध्ययनकर्त्ता द्वारा निम्नांकित उपकरणों का प्रयोग किया गया है–

1. प्रमापीकृत उपकरण – डॉ. एस.पी. अहलुवालिया द्वारा निर्मित Teacher Attitude Inventory (T.A.I.) का प्रयोग किया गया है।
2. स्वनिर्मित उपकरण – 'शिक्षक मूल्य मापनी' का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकी

अध्ययनकर्त्ता ने निम्नलिखित सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया है –

1. मध्यमान
2. मानक विचलन
3. 'टी' परीक्षण

निष्कर्ष

किसी भी अध्ययन का निष्कर्ष निकालने की एक निश्चित प्रक्रिया होती है जिसके अन्तर्गत संबंधित अध्ययन के पश्चात् जो तथ्यपरक परिणाम प्राप्त होते हैं, उनके आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं और उनका सामान्यीकरण किया जाता है, जिससे निकाले गए निष्कर्ष सामान्य व्यक्ति को भी सहजता एवं प्रभाव पूर्णता के साथ समझ आ सकें।

प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययनकर्त्ता ने यथाशक्ति व्यापक दृष्टिकोण तर्कसंगत विचारों का विश्लेषण तथा निरीक्षण करते हुए संकलित साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन एवं विवेचन के आधार पर सफलतापूर्वक निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया है। प्रस्तुत अध्ययन मे निर्धारित उद्देश्यों के अन्तर्गत निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए –

निष्कर्ष

1. सरकारी एवं गैर–सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
2. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी एवं गैर–सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
3. शहरी क्षेत्र के सरकारी एवं गैर–सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

4. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी एवं शहरी क्षेत्र के सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
5. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी एवं शहरी क्षेत्र के गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
6. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
7. शहरी क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
8. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों की महिला शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
9. शहरी क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

निष्कर्ष

1. माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
2. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
3. शहरी क्षेत्र के सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
4. ग्रामीण क्षेत्र के गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
5. शहरी क्षेत्र के गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
6. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
7. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

8. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
9. शहरी क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

निष्कर्ष

1. माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
2. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
3. शहरी क्षेत्र के सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
4. ग्रामीण क्षेत्र के गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
5. शहरी क्षेत्र के गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
6. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
7. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
8. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
9. शहरी क्षेत्र के सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

निष्कर्ष:

1. सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
2. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
3. शहरी क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
4. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी एवं शहरी क्षेत्र के सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
5. ग्रामीण क्षेत्र के गैर-सरकारी एवं शहरी क्षेत्र के गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
6. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
7. शहरी क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
8. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
9. शहरी क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

निष्कर्ष

1. माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
2. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
3. शहरी क्षेत्र के सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

4. ग्रामीण क्षेत्र के गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
5. शहरी क्षेत्र के गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
6. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरूष शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
7. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
8. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
9. शहरी क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

निष्कर्ष

1. माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
2. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
3. शहरी क्षेत्र के सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
4. ग्रामीण क्षेत्र के गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
5. शहरी क्षेत्र के गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
6. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
7. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

8. ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
9. शहरी क्षेत्र के सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कम अनुभवी एवं अधिक अनुभवी शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

निष्कर्ष

1. माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
2. सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है। गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
3. पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है। महिला शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
4. कम अनुभवी शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों में 0.01 स्तर पर सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है। अधिक अनुभवी शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

शैक्षिक निहितार्थ

शिक्षा के नवीनतम मापदण्ड अर्जित करने के लिये शैक्षिक उपकरण, शिक्षण विधि, शिक्षण सामग्री, शैक्षिक वातावरण तथा विभिन्न शैक्षिक उद्देश्यों, शिक्षा व्यवस्था व विषयवस्तु, मूल्यांकन प्रणाली में निरन्तर अनुसंधान किए जाते हैं तथा अनुसंधान निष्कर्षों के आधार पर संबंधित क्षेत्रों में आवश्यक परिवर्तन किए जाते हैं। अध्ययनकर्त्ता के सम्पूर्ण प्रयास मूर्त्त होकर अध्ययन के निष्कर्ष के रूप में प्रकट होते हैं, यह अध्ययन शिक्षाशास्त्रियों, नीति-निर्धारकों, विचारकों को चिन्तन मनन करने के लिये बाध्य कर सकता है तथा यह निष्कर्ष शिक्षा जगत् में व्यावहारिक रूप में उपयोगी हो सकता है।

प्रस्तुत अध्ययन के शैक्षिक निहितार्थ को निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. प्रस्तुत अध्ययन भावी अनुसंधान कार्य हेतु दिशा–निर्देश एवं मार्गदर्शन देने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है।
2. प्रस्तुत अध्ययन शिक्षकों के मूल्यों और शिक्षण अभिवृत्ति को उद्धत करने हेतु सहायक हो सकता है।
3. प्रस्तुत अध्ययन के परिणाम शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति एवं मूल्यों में अभिवृद्धि करने हेतु व्यूह रचना निर्माण हेतु सहायक सिद्ध हो सकता है।
4. प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से शिक्षक अपने व्यवसाय के प्रति अधिक सकारात्मक अभिवृत्ति अपनाने हेतु प्रेरित हो सकते हैं।
5. शिक्षकों के जीवन में नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देने हेतु योजना निर्माण के क्षेत्र में प्रस्तुत अध्ययन सहायक हो सकता है।
6. अध्ययन के परिणाम शिक्षा के क्षेत्र में आयी गिरावट को दूर करने में सहायक हो सकते हैं।
7. अध्ययन के माध्यम से समाज, शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं नीति निर्माताओं में अध्यापन व्यवसाय की गरिमा पुनः स्थापित की जा सकती है।

संदर्भ

अस्थाना, विपिन, 1997 '*मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन*', आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर

अरोड़ा, रीता एवं सुदेश मारवाह, 1998 '*शिक्षा मनोविज्ञान एवं सांख्यिकी*', जयपुर, 23, भगवानदास मार्केट, चौड़ा रास्ता,

भार्गव महेश, 1999 '*मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन*', आगरा, एच. पी. भार्गव बुक हाउस

बघेला एवं व्यास, 2002 '*शाला संगठन एवं शिक्षा समस्याएँ*', आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर

भारद्वाज दिनेश चन्द्र, 2000 '*भारतीय शिक्षा की आधुनिक समस्याएँ*', आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर,

ब्राउन, एफ, 1990 *प्रिन्सिपल ऑफ एजूकेशन एण्ड साइक्लोजीकल टैस्टिंग,* सैकण्ड एडिशन यू.एस.ए. हार्पर एण्ड कंपनी

ब्राडवे, के.पी., 1999 द *सोशल कम्पीटेंस ऑफ एडोलसेन्स चिल्ड्रेन,* नई दिल्ली, हारानन्द पब्लिकेशन,

भटनागर, ए.बी., मीनाक्षी भटनागर, 2004 *शिक्षण व अधिगम का मनोविज्ञान,* मेरठ, आर. लाल. बुक डिपो, चतुर्थ संस्करण

भटनागर, सुरेश, 1993 *अधिगम एवं विकास के मनोसामाजिक आधार,* मेरठ, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, चतुर्थ संस्करण,

भटनागर, सुरेश, वशिष्ठ कमला, सिंह एम. के., 1996 *शैक्षिक प्रबंध और शिक्षा की समस्याएँ,* मेरठ, सूर्या पब्लिकेशन, द्वितीय संस्करण,

भार्गव महेश, 1993 '*आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन*', द्वितीय संस्करण, आगरा, भार्गव बुक हाउस,

भार्गव, उषा, 1993 *किशोर मनोविज्ञान,* जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,

सी.वी. गुड व डी.ई. स्केट्स, 1954 *मैथड्स ऑफ रिसर्च,* न्यूयार्क, ऐप्लीटान सेन्चुरी क्राफ्ट

चौहान, एस.एस., 1985 *उच्च शिक्षा मनोविज्ञान,* नई दिल्ली , विकास पब्लिशिंग हाउस,

डेविड, जे.एपफ, 1972 द *रिसर्च प्रॉसेस इन एजूकेशन,* शिकागो, हॉल्ड रिनहाट विन्सटन,

श्रीवास्तव, डी.एन., 1990 *सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुसंधान,* आगरा, साहित्य प्रकाशन,

डब्ल्यू हेरिस चेस्टर, 1960 *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ एजूकेशन रिसर्च,* तृतीय संस्करण, न्यूयार्क, मेकमिलन,

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 2, अगस्त 2015

शोध टिप्पणी/संवाद

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता के प्रभावी कारक

ललित कुमार* एवं **इम्तियाज आलम****

सारांश

वर्त्तमान शोध अध्ययन उच्चतर माध्यमिक स्तरीय विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता से संबंधित है। स्थान, अध्ययन के विषय, लिंग एवं विद्यालय के प्रकार शोध के स्वतंत्र चर हैं, जबकि सृजनात्मकता अध्ययन का आश्रित चर। 600 उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों का चुनाव पटना जिले के विभिन्न विद्यालयों से परतीय आकस्मिक प्रतिदर्श तकनीक से किया गया है। अध्ययन के लिए 20 प्रतिशत निम्न सृजनशील विद्यार्थियों का चुनाव यह जानने के लिए किया गया है कि क्या निम्न सृजनशील विद्यार्थी आपस में, वर्णित स्वतंत्र चरों के सापेक्ष में, भिन्न हैं या नहीं? आँकड़ों के विश्लेषण के लिए मध्यमान, मानक विचलन एवं टी. मूल्य की गणना की गयी है। अध्ययन के आधार पर यह पाया गया है कि (क) शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। (ख) विज्ञान एवं कला के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अंतर नहीं है। (ग) छात्रों एवं छात्राओं की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अंतर नहीं है। (घ) सरकारी एवं निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

सृजनशीलता शिक्षा एवं मनोविज्ञान में शोध अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण विषय है। यह खेद का विषय है कि सृजनात्मकता पर आधारित शोध का प्रकाशन हिन्दी भाषा में

*शिक्षा संकाय, पटना विश्वविद्यालय, पटना
**एस.सी.ई.आर.टी., पटना

लगभग नगण्य है। सृजनशीलता का विकास, सृजनशील वातावरण का निर्माण एवं सृजनशील विद्यार्थियों की पहचान न केवल किसी राष्ट्र के विकास के लिए जरुरी है बल्कि सम्पूर्ण मानवता का विकास भी इससे ही संबंधित है। नवीनता सृजनशीलता का हृदय है और नवीन वस्तुओं का सृजन तथा सृजित वस्तुओं का नवीन प्रयोग ही सृजनात्मकता है। वर्त्तमान शोध अध्ययन निम्न सृजनशील विद्यार्थियों पर आधारित है और अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह जानना है कि क्या सृजनात्मकता की दृष्टि से निम्न सृजनशील (20% निम्न) स्थान, अध्ययन के विषय, लिंग एवं विद्यालय के प्रकार की दृष्टि से भिन्न हैं अथवा नहीं? अब तक हुए विभिन्न अध्ययनों के आधार पर निम्न प्रकार के निष्कर्ष सामने आये हैं। अग्रवाल एवं अग्रवाल (1999) ने छात्रों को अधिक सृजनशील पाया है। सिंह, एस.के. (2011) ने छात्राओं को अधिक सृजनशील पाया है। गखार एवं लत्ता (2010) ने अपराधी एवं सामान्य बालकों एवं बालिकाओं की सृजनशीलता में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया है। कुमार (1994) ने निजी विद्यालय के विद्यार्थियों को अधिक सृजनशील पाया है तो कुछ शोधकर्त्ताओं ने निजी एवं सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में कोई अंतर नहीं पाया है। जारियल एवं शर्मा (1993) ने विज्ञान के विद्यार्थियों को तथा जारियल (1981) ने कला के विद्यार्थियों को अधिक सृजनशील पाया है। अंदल, कृष्णन एवं स्टेफेन (1996) ने शहरी विद्यार्थियों को अधिक सृजनशील पाया है, जबकि शुक्ला एवं शर्मा (1986) ने ग्रामीण विद्यार्थियों को अधिक सृजनशील पाया है। सहगल (1978) ने शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की सृजनशीलता में कोई अंतर नहीं पाया है। उक्त शोधों एवं सृजनशीलता पर हुए अन्य शोधों के आलोक में ही शोध कर्त्ताओं ने शोध के लिए संबंधित स्वतंत्र चरों का चुनाव किया है। वर्त्तमान अध्ययन के लिए 20 प्रतिशत) निम्न सृजनशील विद्यार्थियों का चुनाव किया गया है और इस दृष्टि से 600 विद्यार्थियों में से केवल सृजनात्मकता के मूल्यांकन के आधार पर निम्न अंक प्राप्त करने वाले 120 (20%) विद्यार्थियों का चुनाव इस अध्ययन के लिए किया गया है। इस दृष्टि से उक्त अध्ययन का निष्कर्ष 20% निम्न सृजनशील विद्यार्थियों पर आधारित है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. निम्न सृजनशील उच्चतर माध्यमिक स्तरीय शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता की तुलना करना।

2. निम्न सृजनशील उच्चतर माध्यमिक स्तरीय विज्ञान एवं कला के विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता की तुलना करना।
3. निम्न सृजनशील उच्चतर माध्यमिक स्तरीय छात्रों एवं छात्राओं की सृजनात्मक क्षमता की तुलना करना ।
4. निम्न सृजनशील उच्चतर माध्यमिक स्तरीय सरकारी एवं निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता की तुलना करना ।

अध्ययन की परिकल्पनाएं

1. निम्न सृजनशील उच्चतर माध्यमिक शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. निम्न सृजनशील उच्चतर माध्यमिक विज्ञान एवं कला के विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
3. निम्न सृजनशील उच्चतर माध्यमिक स्तरीय छात्रों एवं छात्राओं की सृजनात्मक क्षमता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
4. निम्न सृजनशील उच्चतर माध्यमिक स्तरीय सरकारी एवं निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

अध्ययन की विधि : वर्तमान अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन का उपकरण : वाकर मेंहदी के शाब्दिक सृजनात्मक परीक्षण मापनी का प्रयोग आंकड़ों के संग्रहण के लिए किया गया है।

अध्ययन का प्रतिदर्श : 600 उच्चतर माध्यमिक स्तरीय (केवल ग्यारहवीं) विद्यार्थियों का चयन पटना जिले के विभिन्न विद्यालयों से परतीय आकस्मिक प्रतिदर्श तकनीकी से करने के बाद 20% निम्न सृजनशील (120) विद्यार्थियों का चयन वर्त्तमान अध्ययन के लिए किया गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकीय : आँकड़ों के विश्लेषण के लिए मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–मूल्य की गणना की गयी है।

सृजनात्मकता का मापन : सृजनात्मकता का मापन तीन स्तर पर किया गया है–

प्रवाहता (सभी सही एवं उपयुक्त अनुक्रियाओं की संख्या), लचीलापन (अनुक्रिया में प्रयुक्त युक्तियों/विधियों की संख्या) एवं मौलिकता (मौलिक अनुक्रियाओं के चुनाव एवं उक्त अनुक्रिया को व्यक्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या के आधार पर)। इन तीनों वीमाओं पर प्राप्त अंकों के योग को प्रत्येक विद्यार्थी का समग्र सृजनात्मकता माना गया है। आँकड़ों को सामान्य (नौर्मल) बनाने के लिए टी प्रमाणीकृत स्कोर में उसे बदला गया है।

तालिका-1

निम्न सृजनशील शहरी एवं निम्न सृजनशील ग्रामीण उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की सृजनात्मकता के मध्य मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-मूल्य

सृजनशीलता की वीमायें	कोटि	माध्य	मानक विचलन	संख्या	टी-मूल्य	विश्वास का स्तर
प्रवाहता	शहरी	25.90	11.94	60	0.85	सार्थक अंतर नहीं
	ग्रामीण	23.93	13.30	60		
लचीलापन	शहरी	19.08	10.14	60	0.87	सार्थक अंतर नहीं
	ग्रामीण	17.43	10.64	60		
मौलिकता	शहरी	10.83	9.89	60	0.59	सार्थक अंतर नहीं
	ग्रामीण	9.78	9.58	60		
समग्र सृजनशीलता	शहरी	62.78	24.97	60	1.20	सार्थक अंतर नहीं
	ग्रामीण	57.06	27.14	60		

तालिका-1 से यह स्पष्ट है कि शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों के मध्य सृजनशीलता की प्रवाहता, लचीलापन एवं मौलिकता वीमाओं पर टी-मूल्य का मान क्रमश: 0.85, 0.87 तथा 0.59 है। समग्र सृजनशीलता के लिए टी-मूल्य का मान 1.20 है। स्वातंत्र्य संख्या 118 के लिए इनमें से कोई भी मान सार्थक नहीं है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका-2

निम्न सृजनशील विज्ञान एवं निम्न सृजनशील कला के उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की सृजनात्मकता के मध्य मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-मूल्य

सृजनशीलता की वीमायें	कोटि	माध्य	मानक विचलन	संख्या	टी-मूल्य	विश्वास का स्तर
प्रवाहता	विज्ञान	27.38	12.09	60	1.17	सार्थक अंतर नहीं
	कला	24.68	13.07	60		
लचीलापन	विज्ञान	20.80	9.58	60	1.34	सार्थक अंतर नहीं
	कला	18.35	10.38	60		
मौलिकता	विज्ञान	11.73	11.57	60	0.87	सार्थक अंतर नहीं
	कला	10.10	8.77	60		
समग्र सृजनशीलता	विज्ञान	66.05	26.43	60	1.49	सार्थक अंतर नहीं
	कला	58.91	26.01	60		

तालिका-2 से यह स्पष्ट है कि विज्ञान एवं कला के विद्यार्थियों के मध्य सृजनशीलता की प्रवाहता, लचीलापन एवं मौलिकता वीमाओं पर टी-मूल्य का मान क्रमशः 1.17, 1.34 और 0.87 है। समग्र सृजनशीलता के लिए टी-मूल्य मान 1.49 है। स्वातंत्र्य संख्या 118 के लिए इनमें से कोई भी मान सार्थक नहीं है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि विज्ञान एवं कला के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका-3

उच्चतर माध्यमिक स्तरीय निम्न सृजनशील छात्रों एवं निम्न सृजनशील छात्राओं की सृजनशीलता के मध्य मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-मूल्य

सृजनशीलता की वीमायें	कोटि	माध्य	मानक विचलन	संख्या	टी-मूल्य	विश्वास का स्तर
प्रवाहता	छात्र	24.71	13.07	60	0.03	सार्थक अंतर नहीं
	छात्रा	24.78	13.68	60		

लचीलापन	छात्र	18.00	10.37	60	0.32	सार्थक अंतर नहीं
	छात्रा	18.61	10.65	60		
मौलिकता	छात्र	9.80	10.55	60	0.18	सार्थक अंतर नहीं
	छात्रा	10.13	9.60	60		
समग्र सृजनशीलता	छात्र	59.23	26.69	60	0.004	सार्थक अंतर नहीं
	छात्रा	59.25	27.72	60		

तालिका-3 से यह स्पष्ट है कि छात्र एवं छात्राओं के मध्य सृजनशीलता की प्रवाहता, लचीलापन एवं मौलिकता वीमाओं पर टी-मूल्य का मान क्रमशः 0.03, 0.32 एवं 0.18 है। समग्र सृजनशीलता के लिए टी-मूल्य मान 0.004 है। स्वातंत्र्य संख्या 118 के लिए इनमें से कोई भी मान सार्थक नहीं है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि छात्र एवं छात्राओं की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका-4

निम्न सृजनशील सरकारी एवं निम्न सृजनशील निजी उच्चतर माध्यमिक स्तरीय विद्यार्थियों की सृजनात्मकता के मध्य मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-मूल्य

सृजनशीलता की वीमायें	कोटि	माध्य	मानक विचलन	संख्या	टी-मूल्य	विश्वास का स्तर
प्रवाहता	सरकारी	24.68	13.07	60	0.36	सार्थक अंतर नहीं
	निजी	25.56	13.51	60		
लचीलापन	सरकारी	18.35	10.38	60	1.19	सार्थक अंतर नहीं
	निजी	18.71	10.60	60		
मौलिकता	सरकारी	10.10	8.77	60	0.11	सार्थक अंतर नहीं
	निजी	9.90	10.59	60		
समग्र सृजनशीलता	सरकारी	58.91	26.01	60	0.31	सार्थक अंतर नहीं
	निजी	60.43	27.91	60		

तालिका-4 से यह स्पष्ट है कि सरकारी एवं निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों के मध्य सृजनशीलता की प्रवाहता, लचीलापन एवं मौलिकता वीमाओं पर टी-मूल्य का मान क्रमशः 0.36, 1.19 एवं 0.11 है। समग्र सृजनशीलता के लिए टी-मूल्य मान 0.31 है। स्वातंत्र्य संख्या 118 के लिए इनमें से कोई भी मान सार्थक नहीं है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सरकारी एवं निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

अध्ययन का प्राप्य एवं निष्कर्ष

1. निम्न सृजनशील शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है ।
2. निम्न सृजनशील विज्ञान एवं कला के विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है ।
3. निम्न सृजनशील छात्र एवं छात्राओं की सृजनात्मक क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है ।
4. निम्न सृजनशील सरकारी एवं निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है ।

संदर्भ

अग्रवाल एवं अग्रवाल (1999), 'क्रियटिविटि एण्ड इंटेलिजेन्ट्स : इक्सप्लोरेशन वीथ सेक्स डिफरेन्स', साइकोलिंगवा, 29,127-132.

अंदल, कृष्णन एवं स्टेफेन (1996), 'क्रियटिव थिंकिंग इन रिलेशन टू सेक्स, सोसियो-इकोनोमिक स्टेट्स एण्ड लोकेल', इन्टरनेशनल एडूकेटर, 11 (1 एवं 2), तिरुअनंतपुरम, 23-26.

कुमार, ललित (1994), 'इथनिसीटी, टाइप्स ऑफ स्कूल्स एण्ड सेक्स वैरियसन एज कोरिलेटस ऑफ क्रियेटिविटि एमौंग सेकण्डरी स्कूल पुपिल्स', इंडियन साइकोलौजिकल रिव्यू, 42 (9-10), आगरा साइकोलौजिकल रिसर्च सेल, 25-33.

गखार एवं लता (2010), 'इन्टेलिजेंस, क्रियेटिविटि, सेल्फ-कन्सेप्ट एण्ड पर्सनालिटी कैरेक्टरिसटिक ऑफ डेलिनक्वेंट एण्ड नान-डेलिन्क्वेंट', टीचर एजुकेशन, आई.ए.टी. ई. जरनल, 44(1-2), 73-78.

जारियल, जी. एस. (1981), 'क्रियेटिविटि, इन्टेलीजेंस एण्ड एकेडेमिक एचिवमेंट देयर रिलेशनसिप्स एण्ड डिफरेनसेज वीथ रिफरेन्स टू सेक्स एण्ड एकेडमिक सब्जेक्ट्स', जरनल ऑफ एजुकेशन एण्ड साइकोलौजी, 39 (2).

जारियल, जी.एस. एवं शर्मा, ए. के. (1993), 'सेक्स एण्ड एकेडेमिक सब्जेक्ट ऑफ द स्टूडेण्ट्स एज दि डिटरमिनान्ट्स ऑफ देयर क्रियेटिव थिंकिंग एबिलिटिज', स्टेट्स ऑफ इंडियन रिसर्च इन क्रियेटिविटी, तिवारी एवं पाल द्वारा संपादित, आगरा साइकोलौजिकल रिसर्च सेल, आगरा, 290–294.

सहगल, के. (1978), 'स्कूल सिस्टम एज रिलेटेड टू क्रियेटिविटि ऑफ स्टूडेन्ट्स', दि प्रोग्रेस ऑफ एडूकेशन, 52 (10–11), 207–211, क्रियेटिविटि इन एडूकेशन में वर्णित, आगरा, 88–89.

सिंह, एस. के. (2011), 'ए स्टडी ऑफ क्रियेटिविटि, सेक्स एण्ड बर्थ आडर ऑफ स्कूल स्टूडेण्ट्स' विहैवियरल रिसर्च रिव्यू, 3(1), पटना, 162–165.

शुक्ला एवं शर्मा (1986), 'सेक्स डिफरेन्सेज इन सांइटिफिक क्रियटिविटि', इंडियन साइकोलौजिकल रिव्यू, 30(3), 32–35.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 2, अगस्त 2015

शोध टिप्पणी/संवाद

सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

संजीव कुमार शुक्ला*

सारांश

किसी भी व्यक्ति का व्यवहार उसके पर्यावरण (सांस्कृतिक, सामाजिक, पारिवारिक, भौगोलिक) के द्वारा प्रभावित होता है। यदि यह प्रभाव सकारात्मक होता है तो बालक का विकास भी सामान्य रूप से गतिशील रहता है किन्तु यदि यह प्रभाव नकारात्मक हो तो बालक का विकास भी बाधित हो जाता है। मनोविज्ञान ने बालक को दो भागों में बांटा है– सामान्य एवं विशिष्ट बालक। विभिन्न लेखकों एवं विद्वानों ने विशिष्ट बालकों को उनकी विशिष्टता की प्रकृति, विस्तार व क्षेत्र के आधार पर अलग-अलग तरह से वर्गीकृत किया है। मनोविज्ञान तथा शिक्षा के क्षेत्र में व्यावहारिक उपयोग के लिये समस्त प्रकार के विशिष्ट बालकों को चार मुख्य वर्गों में रखा जा सकता है –

इस आधार पर कई अध्ययन किये गये हैं जो बालकों की विशिष्टता से सम्बन्धित हैं। शोधार्थी ने कई शोधों का अध्ययन किया तत्पश्चात् उसने अपने अध्ययन के लिए सामान्य एवं अस्थि विकलांग बालकों को लिया और शोध विषय के रूप में 'सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन' को लिया। इसके लिए शोधार्थी ने ग्वालियर जनपद के पॉच विद्यालयों के 'सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों को लिया'। इन विद्यालयों के चयन में यादृच्छिक पद्धति को अपनाया और

* प्रवक्ता, बी.एड. विभाग, श्री गांधी महाविद्यालय, सिधौली, सीतापुर, उत्तर प्रदेश

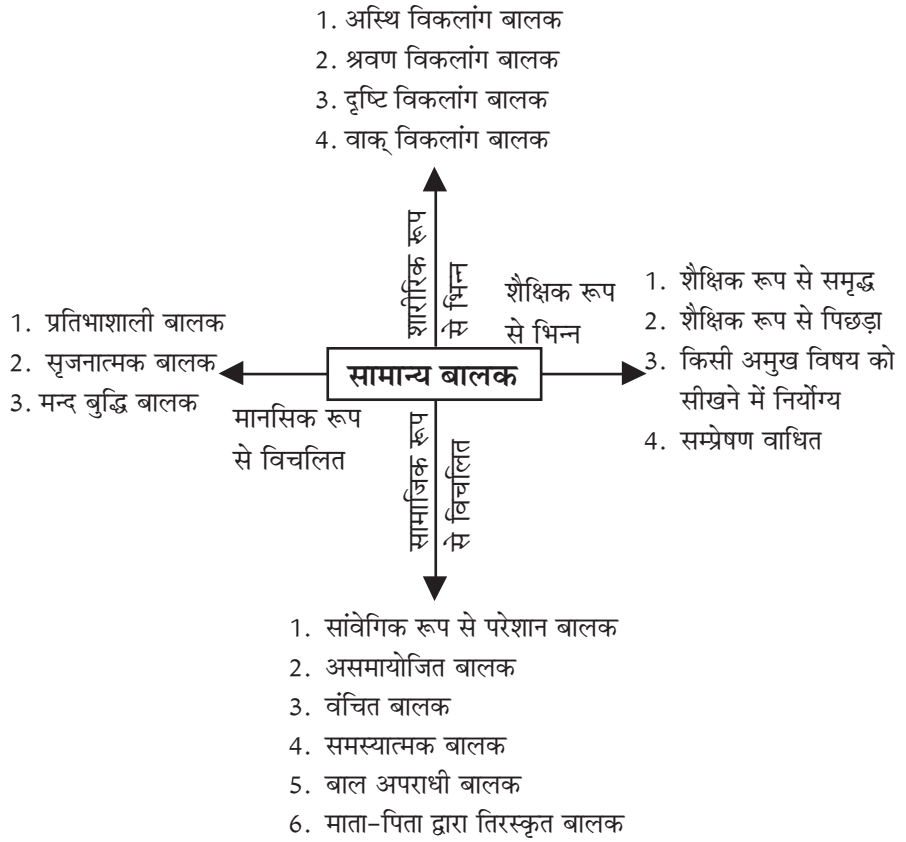

उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया। इन परिणामों की व्याख्या एवं सांख्यिकी विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, टी-परीक्षण का प्रयोग किया। शोधार्थी ने अपने अध्ययन में पाया कि सामान्य एवं अस्थि विकलांग बालकों के समायोजन में अन्तर है। और यह अन्तर उनके अस्थि विकलांग होने एवं उन्हें शिक्षा की विशेष सुविधा न होने के कारण दृष्टिगोचर हो रहा है।

प्रस्तावना

समाज का विकास उसमें निहित सम्पूर्ण मानवीय क्षमताओं का कुशलतापूर्वक उपभोग पर निर्भर करता है, समाज के सभी वर्ग के सहयोग के बिना पूर्ण विकास सम्भव नहीं हो सकता है। शिक्षा किसी समाज के उर्ध्वगामी विकास का सबसे महत्वपूर्ण कारक है।

भारत में विकलांग लोगों की संख्या अधिक है और इनके विकास के बिना देश का पूर्ण विकास सम्भव नहीं है। भारत में विकलांग लोगों के लिए शिक्षा का इतिहास एक बदलते स्वरूप में उभरता हुआ दिखाई देता है।

भारत की विशिष्ट शिक्षा आयामों में एक महत्वपूर्ण आयाम है– 'समावेशित शिक्षा'। जिसका अर्थ है– 'विकलांग विद्यार्थियों को सामान्य विद्यार्थियों की सभी शैक्षिक गतिविधियों में सम्मिलित करके शैक्षिक अवसर व सुविधायें उपलब्ध कराना'।

सामान्य बालक विशिष्ट बालकों से बहुत अधिक भिन्न होते हैं। यह भिन्नता शारीरिक, बौद्धिक, संवेगात्मक अथवा सामाजिक इत्यादि किसी भी क्षेत्र में हो सकती है। कभी-कभी यह भिन्नता इतनी अधिक होती है कि विद्यालय की दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों से इन्हें कोई लाभ नहीं होता और इन्हें विशेष ध्यान की आवश्यकता होती है। ऐसे बालकों को समाज के साथ तालमेल करने में कभी-कभी कठिनाई का अनुभव होता है और यही कारण है कि विशिष्ट बालक समायोजन करने में खुद को असमर्थ पाते हैं। कहते हैं कि किसी भी व्यक्ति का व्यवहार उसके पर्यावरण के द्वारा प्रभावित होता है। यदि यह सकारात्मक होता है तो विकास भी सकारात्मक होगा और यदि यह नकारात्मक होता है तो व्यक्ति के विकास व सामन्जस्य में बाधा आ जाती है।

सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के समायोजन में विद्यालय की अहम भूमिका रहती है। इसी प्रकार शिक्षक विद्यार्थियों के लिए एक आन्तरिक प्रेरणा का कार्य करते हैं चूँकि समायोजन एक अर्जित कारक है, इसीलिए यह सदैव सभी के लिए एक समान नहीं रहता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति भिन्न है इसीलिए उसका समायोजन भी अलग-अलग होगा। यदि विकलांगता बालक को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है, तो उसके व्यवहार एवं विकास में नकारात्मकता का प्रभाव मिलता है। इस प्रकार के कई अध्ययन किए गए हैं पर भारतीय परिवेश में ऐसे अध्ययनों की मात्रा सीमित है।

यह अध्ययन अध्यापकों, छात्रों और अभिभावकों के लिए भी लाभदायक सिद्ध होगा। यह अध्ययन समाज के अन्य वर्गों तथा अनुसंधानकर्ताओं के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा। समाज में विकलांग बालकों के प्रति उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आयेगा। यह अध्ययन अनुसंधानकर्ताओं को आगे के अध्ययनों के लिए एक आधार प्राप्त कराने में सहायक सिद्ध होगा।

समस्या कथन

'सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन'।

अध्ययन के उद्देश्य

1. सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के गृह समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के स्वास्थ्य एवं संवेगात्मक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के विद्यालयी समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना

1. सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के गृह समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के स्वास्थ्य एवं संवेगात्मक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
4. सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के विद्यालयी समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सीमांकन

1. इस अध्ययन में मध्य प्रदेश राज्य के ग्वालियर जनपद को लिया गया है।
2. ग्वालियर जनपद के पॉच विद्यालयों को लिया गया है।
3. इन विद्यालयों से सामान्य एवं अस्थि विकलांग दोनों विद्यार्थियों को लिया गया है।

अध्ययन के चरः स्वतन्त्र चर – समायोजन।
आश्रित चर – सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थी।

शोध विधि

शोधार्थी द्वारा वर्णात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या

शोधार्थी ने जनसंख्या के रूप में मध्य प्रदेश राज्य का चुनाव किया, और वहॉ के ग्वालियर जनपद को लिया है।

न्यादर्श

शोधार्थी ने यादृच्छिक विधि द्वारा ग्वालियर जनपद के पॉच विद्यालयों को लिया, कुल 80 विद्यार्थियों का चयन किया, जिसमें 40 सामान्य एवं 40 अस्थि विकलांग विद्यार्थी हैं।

उपकरण

अनुसंधान के उपकरण के रूप में वी.के. मित्तल की समायोजन अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

प्रयुक्त सांख्यिकीय प्रविधियां

शोधार्थी ने शोध प्रदत्तों के सांख्यिकी विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, टी-परीक्षण, स्वतंत्रता का अंश प्रयोग किया है।

आंकड़ों का विश्लेषण

तालिका-1

सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के गृह समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

विद्यार्थी	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	टी-मान	सार्थकता (.05 स्तर पर)
सामान्य	40	38.45	4.706	0.95	1.55	सार्थक अन्तर नहीं है।
विकलांग	40	36.97	3.751			

उपरोक्त तालिका से यह प्रदर्शित होता है कि सामान्य तथा अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के मध्य गृह समायोजन में सामान्य विद्यार्थियों का मध्यमान 38.45 और मानक विचलन 4.706 है तथा अस्थि विकलांग विद्यार्थियों का मध्यमान 36.97 तथा मानक विचलन 3.751 है। दोनों की मानक त्रुटि .95 है जिसके आधार पर टी-परीक्षण का मान 1.55

प्राप्त होता है। टी-परीक्षण का यह मान .05 स्तर पर सार्थक नहीं है, अत: शून्य परिकल्पना को स्वीकार करते हुये यह कहा जा सकता है कि सामान्य तथा अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के गृह समायोजन के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका-2

सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

विद्यार्थी	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	टी-मान	सार्थकता (.05 स्तर पर)
सामान्य	40	43.87	5.478	1.28	2.28	सार्थक अन्तर नहीं है।
विकलांग	40	40.95	5.982			

उपरोक्त तालिका से यह प्रदर्शित होता है कि सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के मध्य सामाजिक समायोजन में सामान्य विद्यार्थियों का मध्यमान 43.87 और मानक विचलन 5.478 है तथा अस्थि विकलांग विद्यार्थियों का मध्यमान 40.95 तथा मानक विचलन 5.982 है। दोनों की मानक त्रुटि 1.28 है जिसके आधार पर टी-परीक्षण का मान 2.28 प्राप्त होता है। टी-परीक्षण का यह मान .05 स्तर पर सार्थक है, अत: शून्य परिकल्पना को अस्वीकार करते हुये यह कहा जा सकता है कि सामान्य तथा अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन के मध्य सार्थक अन्तर होता है।

तालिका-3

सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के स्वास्थ्य एवं संवेगात्मक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

विद्यार्थी	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	टी-मान	सार्थकता (.05 स्तर पर)
सामान्य	40	35.02	4.239	1.19	1.61	सार्थक अन्तर नहीं है।
विकलांग	40	33.10	6.283			

उपरोक्त तालिका से यह प्रदर्शित होता है कि सामान्य तथा अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के मध्य स्वास्थ्य एवं संवेगात्मक समायोजन में सामान्य विद्यार्थियों का मध्यमान 35.02

और मानक विचलन 4.239 है तथा अस्थि विकलांग विद्यार्थियों का मध्यमान 33.10 तथा मानक विचलन 6.283 है। दोनों की मानक त्रुटि 1.19 है जिसके आधार पर टी-परीक्षण का मान 1.61 प्राप्त होता है। टी-परीक्षण का यह मान .05 स्तर पर सार्थक नहीं है अत: शून्य परिकल्पना को स्वीकार करते हुये यह कहा जा सकता है कि सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के स्वास्थ्य एवं संवेगात्मक समायोजन के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका-4

सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के विद्यालयी समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

विद्यार्थी	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	टी-मान	सार्थकता (.05 स्तर पर)
सामान्य	40	39.85	5.894	1.25	2.72	सार्थक अन्तर नहीं है।
विकलांग	40	36.45	5.344			

उपरोक्त तालिका से यह प्रदर्शित होता है कि सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के मध्य विद्यालय समायोजन में सामान्य विद्यार्थियों का मध्यमान 39.85 और मानक विचलन 5.894 है तथा अस्थि विकलांग विद्यार्थियों का मध्यमान 36.45 तथा मानक विचलन 5.344 है। दोनों की मानक त्रुटि 1.25 है जिसके आधार पर टी-परीक्षण का मान 2.72 प्राप्त होता है। टी-परीक्षण का यह मान .05 स्तर पर सार्थक है, अत: शून्य परिकल्पना को अस्वीकार करते हुये यह कहा जा सकता है कि सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के विद्यालयी समायोजन के मध्य सार्थक अन्तर है।

निष्कर्ष

परिकल्पना-1: परिणामों के विश्लेषण द्वारा हम यह पाते हैं कि सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के गृह समायोजन के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है, ऐसा अभिभावकों की सकारात्मक सोच के कारण ही, बालकों में आत्मसम्मान की भावना विकसित होती है। विद्यार्थियों के गृह समायोजन में सार्थक अन्तर नहीं आना यह दर्शाता है कि विद्यार्थियों के माता-पिता उनके साथ स्नेह पूर्ण व्यवहार, सकारात्मक सोच एवं अस्थि विकलांगता

को नगण्य समझते हैं, और अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के साथ समान व्यवहार अपनाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप विद्यार्थियों में नकारात्मकता का अभाव मिलता है।

परिकल्पना-2: परिणामों के विश्लेषण द्वारा हम यह पाते हैं कि सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन के मध्य सार्थक अन्तर होता है, जिसका मुख्य कारण उनको मिलने वाला नकारात्मक सामाजिक माहौल हो सकता है या ऐसा सामाजिक सोच के कारण भी हो सकता है। समाज अभी भी अस्थि विकलांग विद्यार्थियों को सामान्य विद्यार्थियों की अपेक्षा कमतर आँकता है तथा उसे अभी भी दया की दृष्टि से देखता है जिसके कारण उसमें हीन भावना जाग्रत होती है।

परिकल्पना-3: परिणामों के विश्लेषण द्वारा हम यह पाते हैं कि सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के स्वास्थ्य एवं संवेगात्मक समायोजन के मध्य सार्थक अन्तर नहीं होता है, जिसका मुख्य कारण उनको मिलने वाला सकारात्मक पारिवारिक माहौल हो सकता है या ऐसा उनकी सकारात्मक सोच के कारण भी हो सकता है। सरकार द्वारा चलायी गयी स्वास्थ्य सेवाऐं तथा कैम्पों के माध्यम से भी अस्थि विकलांग लोगों की सकारात्मक व्यवहार का होना यहॉ पर दिखता है, जिस कारण उनमें हीन भावना जाग्रत नहीं हो पाती है और वे सामान्य विद्यार्थियों के साथ समायोजित हो जाते हैं।

परिकल्पना-4: परिणामों के विश्लेषण द्वारा हम यह पाते हैं कि सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के विद्यालयी समायोजन के मध्य सार्थक अन्तर होता है। विद्यालय का माहौल तथा वहाँ पर उपलब्ध संसाधन सभी बच्चों के लिए एक समान हो सकते हैं। जिसमें सामान्य बालक तो अच्छी तरह से समायोजित हो जाता है परन्तु अस्थि विकलांग बालक के समायोजन में परेशानी होती है। विद्यालय में अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के लिए बैठने की भी उचित व्यवस्था नहीं होती है एवं शौचालय की भी उत्तम व्यवस्था नहीं होती है। इस कारण वे विद्यालय में समायोजन नहीं कर पाते हैं।

शैक्षिक निहितार्थ

प्रस्तुत अध्ययन के प्राप्त परिणामों के आधार पर यह स्पष्ट है कि दोनों वर्गों के समायोजन जानने हेतु यह शोध उपयोगी सिद्ध होगा। दोनों वर्गों के समायोजन के आधार पर यह कहना उचित होगा कि वर्तमान समय में इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि जहॉ एक ओर अस्थि विकलांग विद्यार्थी, सामान्य विद्यार्थियों के साथ गृह तथा स्वास्थ्य एवं संवेगात्मक समायोजन कर लेते हैं। वहीं दूसरी ओर

सामाजिक एवं विद्यालयी समायोजन नहीं कर पाते। अत: अभिभावकों को इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि वह अपने बच्चों की अक्षमता से ध्यान हटा कर उनकी क्षमता की तरफ ध्यान दें। वह विशेष शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली नवीनतम तकनीकी तथा उसकी प्रगति के बारे में जानकारी रखें, उन्हें विशेष शिक्षा से संबंधित पत्रिकाएं, समाचार पत्र तथा शोध पत्रिका को पढ़ते रहना चाहिये। अभिभावकों को अपने बच्चों से धैर्यपूर्वक व्यवहार करना चाहिए तथा उन्हें अभिभावक-अध्यापक गोष्ठी, संगोष्ठी में नियमित शामिल होना चाहिए व अपने बच्चे की विद्यालय प्रगति के बारे में जानकारी रखनी चाहिए।

विशिष्ट शिक्षा के संस्थानों को ऐसे परामर्शदाताओं को बुलाना चाहिए जो विशेष शिक्षा के क्षेत्र में संबंध रखते हों जो कुसमायोजित बच्चों तथा उनके अभिभावकों को उचित परामर्श प्रदान कर सकें। विशेष शिक्षा के क्षेत्र से संबंधित अध्यापकों के लिए सबसे ज्यादा जरुरी है कि वह बच्चे की अक्षमता के बजाय उसकी क्षमता में दृढ़ विश्वास रखें तथा वह ऐसे बच्चों के साथ धैर्यपूर्वक व्यवहार करें, जिससे उनमें आत्मविश्वास आयेगा। गैर-सरकारी संगठनों को भी आम नागरिकों के बीच जागृति (जागरूकता) को बढ़ावा देना चाहिए। साहित्य तथा नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से ऐसे अक्षम लोगों के जीवन के बारे में लोगों को बताया जाना चाहिए जो अपनी अक्षमता के बावजूद बेहतर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। सामाजिक जागरूकता से ही उन्हें सकारात्मक सामाजिक माहौल मिल पायेगा तथा इन अस्थि विकलांग बालकों के सामाजिक समायोजन में आने वाले बाधक तत्वों (धारणाओं) को दूर किया जा सकेगा। उन्हें ऐसा सामाजिक वातावरण उपलब्ध करायें जिसमें वे अपना जीवन सुव्यवस्थित रूप से चलाने के अलावा समाज और राष्ट्र के विकास में भी अपना योगदान कर सकें।

संदर्भ

शुक्ला, संजीव (2010) : 'विकलांगता एवं विकलांगों का पुर्नवास', शिक्षामित्र: त्रैमासिक जर्नल, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा, वर्ष-3, अंक-2, दिसम्बर 2010, पृष्ठ - 17-20।

शुक्ला, संजीव कुमार (2014) : 'समान अवसर, अधिकारों की सुरक्षा और पूर्ण भागीदारी अधिनियम-1995' और विकलांगता, विद्यावार्ता : त्रैमासिक जर्नल, हर्षवर्धन पब्लिकेशन प्रा. लि., लिंबागणेश, जिला-बीड़, महाराष्ट्र, वर्ष-08, वॉल्यूम -06 अक्टूबर से दिसम्बर 2014, पृष्ठ - 148-150।

शुक्ला, संजीव कुमार (2015) : 'विकलांग बालक व शिक्षण पद्धति', विद्यावार्ता: त्रैमासिक जर्नल, हर्षवर्धन पब्लिकेशन प्राइवेट लि., लिम्बागणेश, जिला - बीड़, महाराष्ट्र, वर्ष - 09, वोल्यूम-01, जनवरी से मार्च 2015, पृष्ठ 36-41।

शुक्ला, संजीव कुमार (2014) : ''विकलांगता की चुनौतियां'', जर्नल ऑफ सोशियो-इकोनोमिक रिव्यु, माननीय कांशीराम शोध पीठ, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश, वोल्यूम-2, अंक-1 अक्टूबर - 2014, पृष्ठ 96-98।

शुक्ला, संजीव कुमार व शर्मा, अशोक कुमार एवं भाटिया, तारेश (2014) : प्रतिबल के संदर्भ में सामान्य तथा शारीरिक विकलांग विद्यार्थियों का अध्ययन, शोध-धारा जर्नल, शैक्षिक एवम् अनुसंधान संस्थान, उरई-जालौन (उ.प्र.), वोल्यूम-2-3, जून से सितम्बर 2014, पृष्ठ - 233-237।

केवट, आर.एन. (2009) : समेकित शिक्षा के अन्तर्गत सामान्य एवं विशेष विद्यालयों में अध्ययनरत् विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं सामाजिक समायोजन का अध्ययन, *परिप्रेक्ष्य,* राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), नई दिल्ली, वर्ष-16, अंक-1, अप्रैल 2009, पृष्ठ-109-113।

यादव, कमलेश एवं नायक, गोपाल प्रसाद (2009) : दृष्टिबाधित, मूकबधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन, *परिप्रेक्ष्य,* राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), नई दिल्ली, वर्ष-16, अंक-3, दिसम्बर 2009, पृष्ठ-43-50।

सिंह, अजय कुमार (2008) : भारत में समावेशित शिक्षा का स्वरूप, *परिप्रेक्ष्य,* राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), नई दिल्ली, वर्ष-15, अंक-1, अप्रैल 2008, पृष्ठ-81-86।

सिंह, रजनी रंजन एवं नामदेव, हेमन्त (2014) : भारत में समावेशी शिक्षा की दशा और दिशा, *परिप्रेक्ष्य,* राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), नई दिल्ली, वर्ष-21, अंक-3, दिसम्बर 2014, पृष्ठ 1-18।

शर्मा, संदीन (2007) : भारत में विकलांगों की शिक्षा की एक हिस्टोरिकल बैकग्राउंड, भारतीय आधुनिक शिक्षा, *राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद,* नई दिल्ली, वर्ष-28, अंक-4, अप्रैल-2007, पृष्ठ 110-115।

बाजपेयी, नितिन व भाटिया, तारेश (2015) : हाईस्कूल विद्यार्थियों के समायोजन के संदर्भ में भीड़ अनुभूति का अध्ययन, शोध-धारा जर्नल, शैक्षिक एवम् अनुसंधान संस्थान, उरई-जालौन (उ.प्र.), वोल्यूम-4 व 1, दिसम्बर 2014 से मार्च 2015, पृष्ठ 328-334।

सिंह, ए.के. एवं गुप्ता, ए.सेन. (1987) : *मैनुअल फॉर हाईस्कूल एडजस्टमेंट इन्वेंटरी* (एच.एस. ए.आई.), अंकुर साइकालॉजी एजेंसी, लखनऊ।

'समेकित शिक्षा' के अन्तर्गत शिक्षण प्रशिक्षण हेतु ट्रेनिंग माड्यूल, *सर्व शिक्षा अभियान,* उ.प्र. *सभी के लिए शिक्षा परियोजना परिषद्,* विद्या भवन, निशातगंज, लखनऊ।

भार्गव, महेश (2007), विशिष्ट बालक-शिक्षा एवं पुर्नवास, एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।

बिष्ट, आभा रानी एवं सक्सेना, स्वाति (2004-2005) विशिष्ट बालक, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

ऋषिश्वर, विनय (2011-2012), विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा तथा निर्देशन एवं परामर्श, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

वर्मा, बी.एस. एवं अग्रवाल, ज्योति (2013) विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों की शिक्षा तथा निर्देशन एवं परामर्श, साहित्य प्रकाशन, आगरा ।

वाजपेई, एल.बी. एवं वाजपेई, अमिता (2004) : विशिष्ट बालक, भारत बुक सेन्टर, लखनऊ।

कुमार, संजीव (2007) : *विशिष्ट शिक्षा,* जानकी प्रकाशन, पटना।

शर्मा, वाय.के. (2009) : *शारीरिक रूप से विकलांग बालक,* कनिष्क पब्लिकेशन, दिल्ली।

शर्मा, आर.के. एवं पाराशर, दीपिका व दुबे एस.के. (2015), समावेशी शिक्षा, राधा प्रकाशन मन्दिर प्रा.लि., आगरा।

सेवा संदेश (2002) : *विकलांग सेवा अंक,* भाऊराव देवरस सेवा न्यास, सरस्वती कुंज, निराला नगर लखनऊ।

सक्सैना, पी.के. (2001) : *प्रारम्भिक शिक्षा के उभरते आयाम एवं शैक्षिक मूल्यांकन,* विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

कपिल, एच.के. (2004) : *अनुसंधान विधियाँ,* एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।

राय, पारसनाथ (1996) : *अनुसंधान परिचय,* लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

सुखिया, एस.पी. व मेहरोत्रा, पी.वी. एवं मेहरोत्रा, आर.एन. (1990) : *शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व,* विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

सरीन, शशिकला एवं सरीन, अंजनी (नवीन संस्करण) : *शैक्षिक अनुसंधान विधियॉ,* विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

सिंह, ए.एन. एवं सिंह, बी.के. (2007) : *सामाजिक अनुसंधान,* मै. रैपिड बुक सर्विस, लखनऊ।

भाटिया, तारेश (2003) : *आधुनिक मनोवैज्ञानिक सांख्यिकी,* लावण्य प्रकाशन, उरई, उ.प्र.।

सिंह, ए.एन. (2007) : *सांख्यिकी,* लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

गुप्ता, एस.पी. एवं गुप्ता, अलका (2011) : *साँख्यिकीय विधियाँ,* शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

सिंह, अरूण कुमार (2014) : *मनोविज्ञान, समाजशास्त्र* तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास, पटना।

सिंह, अरूण कुमार (2009) : *शिक्षा मनोविज्ञान,* भारती भवन (पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स), पटना।

पाठक, पी.डी. (2013–2014) : *शिक्षा मनोविज्ञान,* अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

लाल, रमन बिहारी एवं पलोड़, सुनीता (2011) : *अधिगमकर्ता का मनोविज्ञान एवं शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया,* आर.लाल. बुक डिपो, मेरठ।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 2, अगस्त 2015

शोध टिप्पणी/संवाद

राजस्थान के अजमेर संभाग में प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता की प्रवृत्ति

सुरेन्द्र कुमार* एवं **मुरलीधर मिश्रा****

सारांश

राजस्थान राज्य के अजमेर संभाग में समग्र, लैंगिक तथा विद्यालय प्रशासनवार प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता की प्रवृत्ति के इस शोध अध्ययन में मुख्यत: समय श्रेणी प्रदत्तों (संख्यात्मक) का प्रयोग किया गया है। अजमेर संभाग में 1991 से 2010 प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता का विश्लेषण एवं व्याख्या निर्दिष्ट चरों लैंगिक (पुरुष या छात्र और महिला या छात्रा) तथा विद्यालय प्रशासन (राजकीय एवं निजी) के संदर्भ में करते हुए शोध निष्कर्ष प्राप्त किये गये हैं। अजमेर संभाग में प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता के अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि अजमेर संभाग के प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता में बिन्दु वर्ष 2009–10 को छोड़कर अन्य बिन्दु वर्षों में वृद्धि की प्रवृत्ति सतत् धनात्मक रही है। छात्र विद्यालयों में वृद्धि की प्रवृत्ति जहाँ धनात्मक रही है; वहीं छात्रा विद्यालयों में वृद्धि की प्रवृत्ति ऋणात्मक रही है। राजकीय विद्यालयों की बजाय अराजकीय विद्यालयों में धनात्मक वृद्धि की प्रवृत्ति अधिक रही है। प्राप्त निष्कर्षों की विवेचना प्राथमिक शिक्षा से संबंधित योजनाओं, कार्यक्रमों और विशेषज्ञों से प्राप्त प्रतिक्रियाओं के आधार पर की गयी है।

*शोधार्थी, शिक्षा संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राजस्थान – 304022
**एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राजस्थान – 304022

प्रारम्भिक शिक्षा को सभी की पहुँच में लाने हेतु 86वें संविधान संशोधन के माध्यम से भारत के संविधान में अनुच्छेद 21(क) में शिक्षा को अधिकार रूप में शामिल किया गया है। 'नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009' के तहत 6–14 वर्ष के सभी बच्चों को आवश्यक मानदंडों एवं मानकों को पूरा करने वाले औपचारिक विद्यालय में संतोषप्रद व गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक शिक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है। यह अधिनियम 1 अप्रैल 2010 से प्रभावी हुआ। इस अधिनियम में यह प्रावधान है कि आस–पास के स्कूल में प्रारंभिक शिक्षा को पूरा होने तक बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के अधिकार प्राप्त हैं और कोई भी बच्चा किसी भी प्रकार का शुल्क, प्रभार या व्यय अदा करने के लिए जिम्मेदार नहीं होगा जो उसे प्रारंभिक शिक्षा की पढ़ाई करने या उसे पूरा करने से रोक सकता हो। सभी बच्चों को आवश्यक मानदंडों एवं मानकों को पूरा करने वाले औपचारिक विद्यालय में संतोषप्रद व गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक शिक्षा मिल पाये इस उद्देश्य की पूर्ति राजकीय एवं निजी दोनों प्रयासों से ही सम्भव है।

प्राथमिक शिक्षा से संबंधित अध्ययनों में शर्मा (1977), मयानी (1983), बुच एवं सुडाम (1990), मिश्रा (1990), बिर्दी (1992), पाल एवं पन्त (1995), प्रकाश (1996), सिंह (1997), कुकरेती एवं सक्सेना (2004, अ), मिश्रा (2009), शर्मा (2010), आदि के शोध अध्ययन प्रमुख हैं। अनेक शोधों में बिर्दी (1992), सुराणा (2003), कुकरेती एवं सक्सेना (2004, ब), प्रधान (2009), शर्मा (2010) आदि शोधकर्ताओं ने विद्यालयों की उपलब्धता को शैक्षिक विकास का कारक मानकर अपने शोध में विद्यालयों की उपलब्धाता की प्रवृत्ति का अध्ययन किया है।

राजस्थान में स्वतंत्रता के बाद से अब तक साक्षरता दर में बहुत धीमी वृद्धि हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजस्थान में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कई महत्त्वपूर्ण योजनाएँ लायी गयी हैं लेकिन महिलाओं की स्थिति व बालिका शिक्षा आदि की दृष्टि से राज्य के अनेक क्षेत्र भी पिछड़े हैं। 2001 एवं 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य के अजमेर संभाग में शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त भिन्नता रही है। अजमेर संभाग में शामिल अजमेर जिला प्राचीन काल से ही शिक्षा के क्षेत्र में प्रमुख केन्द्र रहा है। अजमेर जिले को राजस्थान का प्रथम पूर्ण साक्षर जिला घोषित किया गया है और प्रथम पूर्ण साक्षर ग्राम मसूदा भी इसी जिले में आता है। लेकिन अन्य जिलों की स्थिति अजमेर से भिन्न है। महिलाओं के सन्दर्भ में पाँच न्यूनतम साक्षरता वाले जिलों में टोंक का पाँचवा स्थान है। पुरुषों के न्यूनतम साक्षरता वाले पाँच जिलों में भीलवाड़ा का पाँचवां स्थान है।

अजमेर संभाग में संभाग स्तर पर 1991 के पश्चात् प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धाता का स्वरूप कैसा है? इस संभाग में 1991 से अब तक प्राथमिक विद्यालयों की कुल उपलब्धता का विकास किस प्रकार हुआ है? क्या सम्पूर्ण संभाग में लैंगिक आधार पर प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता में भिन्नता है? सरकार द्वारा प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता के लिए क्या प्रयत्न हुए हैं एवं निजी क्षेत्र ने क्या प्रयत्न किये हैं? इन प्रश्नों एवं संस्थितियों को दृष्टिगत रखकर शोधकर्ता द्वय ने राजस्थान राज्य के अजमेर संभाग में समग्र, लिंग तथा विद्यालय प्रशासनवार प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता की प्रवृत्ति का अध्ययन किया है।

अध्ययन के उद्देश्य

संप्रत्ययात्मक पृष्ठभूमि तथा संबद्ध साहित्य की विवेचना के आधार पर प्रस्तुत अध्ययन के निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं–

1. राजस्थान राज्य के अजमेर संभाग में 1991 से 2010 तक प्राथमिक विद्यालयों की समग्र उपलब्धता की प्रवृत्ति का अध्ययन करना।
2. राजस्थान राज्य के अजमेर संभाग में 1991 से 2010 तक प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता की प्रवृत्ति का लैंगिक आधार पर अध्ययन करना।
3. राजस्थान राज्य के अजमेर संभाग में 1991 से 2010 तक प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता की प्रवृत्ति का विद्यालय प्रशासनवार अध्ययन करना।

अध्ययन विधि

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य अजमेर संभाग में प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता की प्रवृत्ति का समग्र, लैंगिक एवं प्रशासनवार अध्ययन करना है। आलोच्य अवधि (1991–2010 तक) में अजमेर संभाग में प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता का वर्णन होने के कारण यह अध्ययन वर्णनात्मक प्रकार का है। अजमेर संभाग में समग्र, लैंगिक तथा विद्यालय प्रशासनवार प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता को एक इकाई के रूप में लेने पर यह एक वैयक्तिक अध्ययन है। यह अध्ययन अतीत और वर्तमान से संबंधित है तथा अवधि विशेष में समग्र, लैंगिक तथा विद्यालय प्रशासनवार प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धाता की प्रवृत्ति का विश्लेषण होने के कारण यह एक विकासात्मक अध्ययन है।

प्रदत्त विश्लेषण प्रक्रिया

इस शोध अध्ययन में मुख्यतया समय श्रेणी प्रदत्तों (संख्यात्मक) का प्रयोग किया गया है। अजमेर संभाग में 1991 से 2010 प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता का विश्लेषण एवं व्याख्या निर्दिष्ट चरों लैंगिक (पुरुष या छात्र और महिला या छात्रा) तथा विद्यालय प्रशासन (राजकीय एवं निजी) के संदर्भ में करते हुए शोध निष्कर्ष प्राप्त किये गये। प्रदत्त विश्लेषण हेतु अजमेर संभाग में प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता के चरों को 1991 से 2010 तक के संख्यात्मक प्रदत्तों का तालिकाबद्ध किया गया। इन तालिकाओं को व्यवस्थित करने एवं गणना करने हेतु इन्हें संगणक (कंप्यूटर) में प्रविष्ट किया गया है। संगणक की सहायता से इन तालिकाओं के प्रदत्तों का पृष्ठभौमिक चरों लैंगिक और विद्यालय प्रशासन के आधार पर सुविधा के लिए तीन-तीन वर्षों के अन्तराल पर छः (6) समय श्रेणी बिन्दुओं (1991-92, 1994-95, 1997-98, 2000-01, 2003-04, 2006-07, 2009-10) को लिया गया है। यहाँ पर यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि शोधकर्ताओं को गहन प्रयासों के बावजूद भी वर्ष 1991 से वर्ष 1993 तक के प्रदत्त उपलब्ध नहीं हो सके। अतः शोध की आन्तरिक वैद्यता को ध्यान में रखते हुए 'समय श्रेणी विश्लेषण' का आरंभ सत्र 1994-95 से किया गया है। आलोच्य अवधि (1991 से 2010 तक) में दशकवार प्राथमिक विद्यालयों की समग्र, लैंगिक तथा विद्यालय प्रशासनवार उपलब्धता का अध्ययन के लिए आलोच्य अवधि को दो तार्किक कालखण्डों (1991 से 2000 को प्रथम दशक एवं 2001 से 2010 को द्वितीय दशक) में वर्गीकृत करना था लेकिन प्रथम दशक के प्रदत्त 1994 से उपलब्धता होने के कारण प्रथम दशक का विस्तार 1994 से 2000 तक और सम्पूर्ण आलोच्य अवधि को 1994 से 2010 तक में परिसीमित किया गया है। उपर्युक्त समय श्रेणी बिन्दुओं के आधार पर रेखाचित्रीय प्रस्तुतीकरण किया गया है।

अजमेर संभाग में प्राथमिक शिक्षा स्तर पर विद्यालयों की समग्र उपलब्धता के अन्तर्गत कुल प्राथमिक विद्यालयों की संख्या को विश्लेषण हेतु लिया गया है। इसके पश्चात् क्रमशः समग्र, लैंगिक और विद्यालय प्रशासनवार प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि की प्रवृत्ति का विश्लेषण करते हुए शोध निष्कर्ष प्राप्त किये गये हैं तथा प्राप्त निष्कर्षों की विवेचना प्राथमिक शिक्षा से संबंधित योजनाओं, कार्यक्रमों और विशेषज्ञों से प्राप्त प्रतिक्रियाओं के आधार पर की गयी है।

(अ) अजमेर संभाग में प्राथमिक स्तर पर विद्यालयों की समग्र उपलब्धता

अजमेर संभाग में प्राथमिक विद्यालयों की कुल उपलब्धता के प्रदत्तों के आधार पर रेखाचित्र-1 और तालिका-1 का निर्माण किया गया है।

रेखाचित्र 1

अजमेर संभाग में प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता

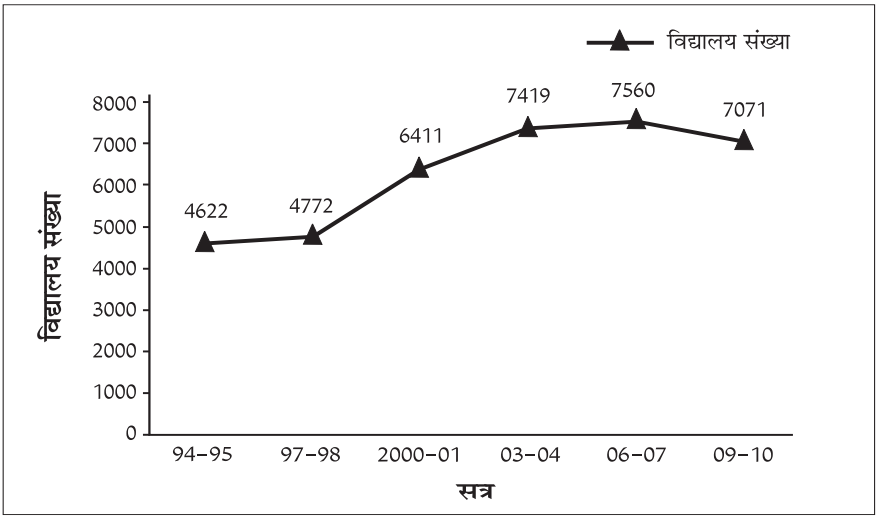

तालिका–1

अजमेर संभाग में प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता

वर्ष	विद्यालय संख्या	संख्या में वृद्धि/कमी	वृद्धि दर
1991–92	–	–	–
1994–95	4622	–	–
1997–98	4772	150	3.25
2000–01	6411	1639	34.35
2003–04	7419	1008	15.72
2006–07	7560	141	1.90
2009–10	7071	–489	–6.47
कुल वृद्धि दर			
1994–2010	2449	52.98	
दशकीय वृद्धि दर			
1994–2000	1789	38.71	
2001–2010	–173	–2.39	

उपर्युक्त रेखाचित्र और तालिका के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अजमेर संभाग में अवधि 1994–2010 में प्राथमिक विद्यालयों में वृद्धि की प्रवृत्ति 52.98% धनात्मक रही है। प्राथमिक विद्यालयों में जहाँ प्रथम दशक में वृद्धि की प्रवृत्ति धनात्मक रही। वहीं द्वितीय दशक में वृद्धि की प्रवृत्ति ऋणात्मक रही है। प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में जहाँ सर्वाधिक वृद्धि दर की प्रवृत्ति बिन्दु वर्ष 2000–01 में 34.35% धनात्मक रही, वहीं सर्वाधिक कम वृद्धि दर बिन्दु वर्ष 2009–10 में 6.47% ऋणात्मक रही है।

निष्कर्ष-विवेचना

अजमेर संभाग में प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अजमेर संभाग के प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता में बिन्दु वर्ष 2009–10 को छोड़कर अन्य बिन्दु वर्षों में वृद्धि की प्रवृत्ति सतत् धनात्मक रही। प्रथम दशक में विद्यालय वृद्धि दर 38.71% धनात्मक रही जिसका मुख्य कारण बिन्दु वर्ष 2000 में डी.पी.ई.पी. व एस.एस.ए. के द्वारा दूर दराज के गाँवों में अतिरिक्त विद्यालयों का खुलना रहा है। द्वितीयक दशक में वृद्धि दर का 2.39% ऋणात्मक रहने का मुख्य कारण दशक के अन्तिम वर्षों में समस्त छात्रा प्राथमिक विद्यालयों का तथा कुछ अन्य विद्यालयों का उच्च प्राथमिक विद्यालयों में क्रमोन्नत होना रहा है।

अजमेर संभाग के प्राथमिक विद्यालयों में बिन्दु वर्ष 2000–01 में तीव्रता से वृद्धि का मुख्य कारण 2 अक्टूबर, 1999 से विश्व बैंक व भारत सरकार के सहयोग से जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी.) की प्रारंभ करना है। अन्य बिन्दु वर्षों में असीमित उतार–चढ़ाव के साथ वृद्धि दर धनात्मक रही है। विशेषज्ञों के अनुसार वर्ष 2009–10 में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में कमी आने का मुख्य कारण सरकारी योजनाएँ रही हैं जिनमें बिन्दु वर्ष 2007–08 में बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु छात्रा प्राथमिक विद्यालयों को उच्च प्राथमिक विद्यालयों में क्रमोन्नत करना रहा।

(अ) लिंग के आधार पर विद्यालयों की उपलब्धता

अजमेर संभाग में लैंगिक आधार पर प्राथमिक विद्यालयों को छात्र व छात्रा विद्यालयों में वर्गीकृत करके विश्लेषित किया गया। लैंगिक आधार पर प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता से संबंधित समय श्रेणी प्रदत्तों के आधार पर रेखाचित्र–2 और तालिका–2 का निर्माण किया गया है।

रेखाचित्र-2

अजमेर संभाग में लैंगिक आधार पर प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता

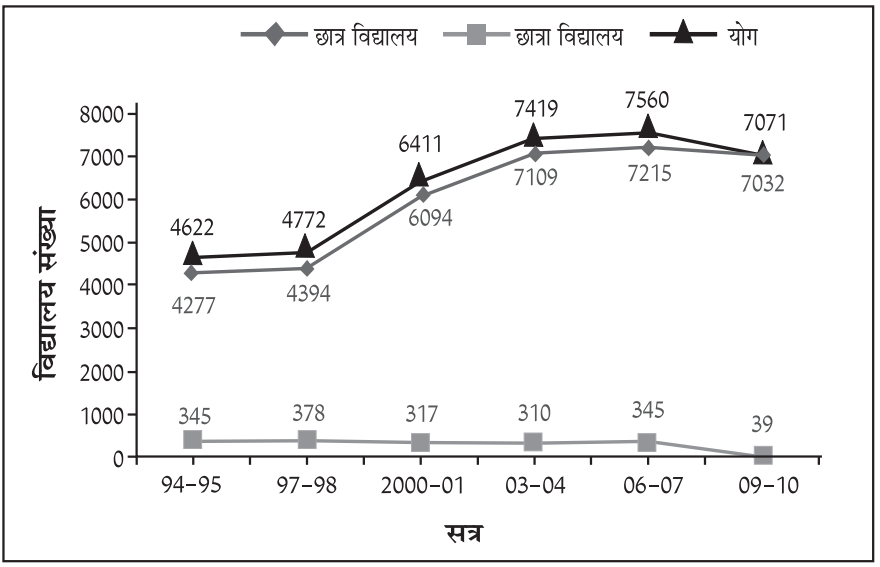

तालिका-2

अजमेर संभाग में लैंगिक आधार पर प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता

वर्ष	छात्र विद्यालय संख्या	छात्रा संख्या में वृद्धि/कमी	वृद्धि दर	विद्यालय संख्या	संख्या में वृद्धि/कमी	वृद्धि दर
1991-92	–	–	–	–	–	–
1994-95	4277	–	–	345	–	–
1997-98	4394	117	2.74	378	33	9.57
2000-01	6094	1700	38.69	317	-61	-16.14
2003-04	7109	1015	16.66	310	-7	-2.21
2006-07	7215	106	1.49	345	35	11.29
2009-10	7032	-183	-2.54	39	-306	-88.70

कुल वृद्धि दर				
वर्ष	**छात्र विद्यालय में वृद्धि/कमी**	**वृद्धि दर**	**छात्रा विद्यालय में वृद्धि/कमी**	**वृद्धि दर**
1994–2010	2755	64.41	–306	–88.70
दशकीय वृद्धि दर				
1994–2000	1817	42.48	–28	–8.12
2001–2010	109	1.57	–282	–87.85

रेखाचित्र–2 व तालिका–2 का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि अजमेर संभाग के छात्र प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता में बिन्दु वर्ष 2009–10 को छोडकर अन्य बिन्दु वर्षों में वृद्धि की प्रवृत्ति सतत् धनात्मक रही। बिन्दु वर्ष 2009–10 में छात्र विद्यालयों की वृद्धि दर 2.54% ऋणात्मक रही। छात्र प्राथमिक विद्यालयों में सर्वाधिक वृद्धि दर बिन्दु वर्ष 2000–01 में 38.69% धनात्मक रही वहीं सबसे कम वृद्धि दर बिन्दु वर्ष 2009–10 में 2.54% ऋणात्मक रही है। बिन्दु वर्ष 1994–95 में कुल छात्रा प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 345 थी। छात्रा प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि दर की प्रवृत्ति उतार–चढ़ाव के साथ अनियमित रूप से धनात्मक एवं ऋणात्मक रही है। छात्रा प्राथमिक विद्यालयों में जहाँ सर्वाधिक वृद्धि दर बिन्दु वर्ष 2006–07 में 11.29% धनात्मक रही वहीं सर्वाधिाक कम वृद्धि दर बिन्दु वर्ष 2009–2010 में 88.70% ऋणात्मक रही। दोनों ही दशकों में छात्र विद्यालयों में वृद्धि की प्रवृत्ति धनात्मक रही है वहीं छात्रा विद्यालयों में वृद्धि की प्रवृत्ति ऋणात्मक रही है। आलोच्य अवधि 1994–2010 में अजमेर संभाग में छात्र प्राथमिक विद्यालयों की वृद्धि दर धनात्मक रही है। वहीं छात्रा प्राथमिक विद्यालयों की वृद्धि दर ऋणात्मक रही है।

निष्कर्ष–विवेचना

अजमेर संभाग में लैंगिक आधार पर प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अजमेर संभाग में छात्र प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता में वृद्धि की प्रवृत्ति बिन्दु वर्ष 2009–10 को छोड़कर अन्य बिन्दु वर्षों में सतत् धनात्मक रही है। बिन्दु वर्ष 2009–10 में विद्यालय संख्या में कमी होने से वृद्धि की प्रवृत्ति ऋणात्मक रही है। इसी प्रकार अजमेर संभाग में छात्रा प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता में वृद्धि की प्रवृत्ति अनियमित रूप से कभी धनात्मक तो कभी ऋणात्मक रही है। तुलनात्मक

रूप से द्वितीय दशक में दोनों प्रकार के विद्यालयों में वृद्धि की प्रवृत्ति में प्रथम दशक की तुलना में कमी आयी है। यह कमी छात्रा विद्यालयों में अधिक देखने को मिली है। अत: सरकार को बालिका शिक्षा पर अधिक ध्यान देने की जरुरत है। कुल आलोच्य अवधि में जहाँ छात्र विद्यालयों में वृद्धि की प्रवृत्ति धनात्मक रही है। वहीं छात्रा विद्यालयों में वृद्धि की प्रवृत्ति ऋणात्मक रही है।

विशेषज्ञों के अनुसार 2000-01 व 2003-04 में छात्र विद्यालयों में वृद्धि का कारण राज्य सरकार द्वारा निजी विद्यालय खोलने के नियमों को सरल बनाना, दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में राजकीय प्राथमिक विद्यालय खोलना रहा है; वहीं बिन्दु वर्ष 2009-10 में विद्यालयों में आई कमी का कारण विद्यालयों का क्रमोन्नत होना रहा है। छात्रा प्राथमिक विद्यालयों में 2000-01 व 2003-04 में आई कमी का कारण बालिका शिक्षा वाले विद्यालयों को सहशिक्षा वाले विद्यालयों में परिवर्तित करना व विद्यालयों का क्रमोन्नत होना रहा है; वहीं बिन्दु वर्ष 2009-10 में विद्यालयों में आई कमी का कारण समस्त बालिका शिक्षा वाले विद्यालयों को क्रमोन्नत करना रहा है।

(ब) प्रशासन के आधार पर विद्यालय उपलब्धता

अजमेर संभाग में प्राथमिक विद्यालयों को प्रशासन के आधार पर राजकीय व अराजकीय विद्यालयों में वर्गीकृत करके विश्लेषित किया गया है। प्रशासन के आधार पर प्राथमिक

रेखाचित्र-3

अजमेर संभाग में प्राथमिक विद्यालयों में प्रशासन के आधार पर विद्यालय उपलब्धता

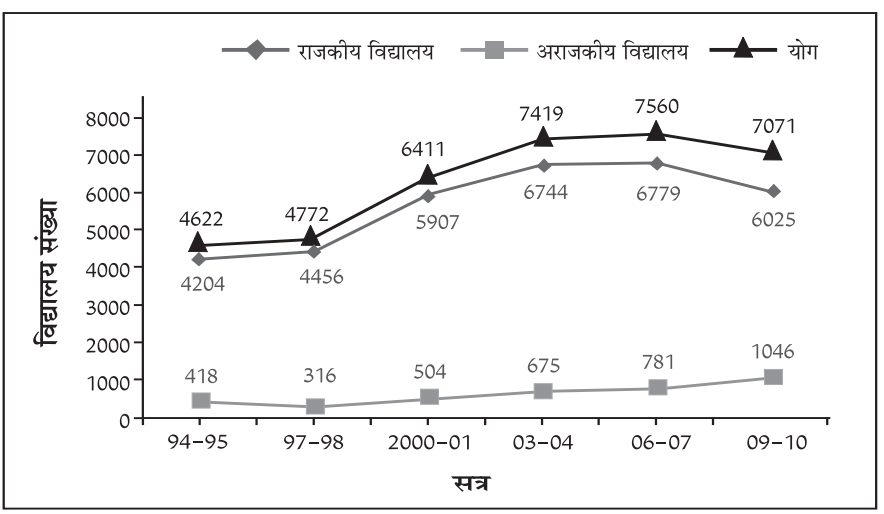

विद्यालयों की उपलब्धता से संबंधित समय श्रेणी प्रदत्तों के आधार पर रेखाचित्र-3 और तालिका-3 का निर्माण किया गया है।

तालिका-3

अजमेर संभाग में प्राथमिक विद्यालयों में प्रशासन के आधार पर विद्यालय उपलब्धता

वर्ष	राजकीय विद्यालय संख्या	अराजकीय संख्या में वृद्धि/कमी	वृद्धि दर	विद्यालय संख्या	संख्या में वृद्धि/कमी	वृद्धि दर
1991-92	–	–	–	–	–	–
1994-95	4204	–	–	418	–	–
1997-98	4456	252	5.99	316	-102	-24.40
2000-01	5907	1451	32.56	504	188	59.49
2003-04	6744	837	14.17	675	171	33.93
2006-07	6779	35	0.52	781	106	15.70
2009-10	6025	-754	-11.12	1046	265	33.93

कुल वृद्धि दर				
वर्ष	**राजकीय विद्यालय की वृद्धि/कमी**	**वृद्धि दर**	**अराजकीय विद्यालय की वृद्धि/कमी**	**वृद्धि दर**
1994-2010	+1821	+43.32	+628	+150.24
दशकीय वृद्धि दर				
1994-2000	+1703	+40.51	+86	+20.57
2001-2010	-709	-10.53	+536	+105.10

रेखाचित्र एवं संबंधित तालिका के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अजमेर संभाग के राजकीय प्राथमिक विद्यालयों में सर्वाधिक वृद्धि दर बिन्दु वर्ष 2000-01 में 32.56% धनात्मक रही वहीं सबसे कम वृद्धि दर बिन्दु वर्ष 2009-10 में 11.12% ऋणात्मक

रही। अन्य बिन्दु वर्षों में वृद्धि दर सतत् धनात्मक रही। अराजकीय प्राथमिक विद्यालयों में जहाँ सर्वाधिक वृद्धि दर बिन्दु वर्ष 2000–01 में 59.49% धनात्मक रही। वहीं सबसे कम वृद्धि दर बिन्दु वर्ष 1997–98 में 24.40% ऋणात्मक रही। अन्य बिन्दु वर्षों में वृद्धि दर उतार–चढ़ाव के साथ सतत् धनात्मक रही। प्रथम दशक में अजमेर संभाग के अराजकीय प्राथमिक विद्यालयों की बजाय राजकीय प्राथमिक विद्यालयों में वृद्धि की प्रवृत्ति अधिक रही वहीं द्वितीय दशक (2001–2010) में राजकीय प्राथमिक विद्यालयों की बजाय अराजकीय प्राथमिक विद्यालयों में वृद्धि की प्रवृत्ति तीव्र रही।

कुल आलोच्य अवधि 1994–2010 में जहाँ अजमेर संभाग के राजकीय प्राथमिक विद्यालयों में वृद्धि दर 43.32% धनात्मक रही वहीं अराजकीय प्राथमिक विद्यालयों में वृद्धि दर 150.24% धनात्मक रही। अराजकीय प्राथमिक विद्यालयों में वृद्धि की प्रवृत्ति अधिक तीव्र रही है।

निष्कर्ष–विवेचना

अजमेर संभाग में प्रशासन के आधार पर प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अजमेर संभाग में राजकीय प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता में वृद्धि की प्रवृत्ति बिन्दु वर्ष 2009–10 को छोड़कर अन्य बिन्दु वर्षों में उतार–चढ़ाव के साथ सतत् धनात्मक रही है। बिन्दु वर्ष 2009–10 में विद्यालयों की संख्या में कमी होने से वृद्धि की प्रवृत्ति ऋणात्मक रही है। इसी प्रकार अजमेर संभाग के अराजकीय प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता में वृद्धि की प्रवृत्ति बिन्दु वर्ष 1997–98 को छोड़कर अन्य बिन्दु वर्षों में सतत् धनात्मक रही है। प्रथम दशक के दौरान दोनों प्रकार के विद्यालयों में वृद्धि दर धनात्मक रही है। वहीं द्वितीय दशक (2001–2010) के दौरान राजकीय विद्यालयों में तीव्र कमी के साथ वृद्धि दर ऋणात्मक रही। अराजकीय विद्यालयों में तीव्र वृद्धि के साथ वृद्धि दर धनात्मक रही है। कुल आलोच्य अवधि में राजकीय विद्यालयों की बजाय अराजकीय विद्यालयों में वृद्धि की प्रवृत्ति अधिक तीव्र धनात्मक रही है।

विशेषज्ञों के अनुसार बिन्दु वर्ष 2000–01 में राजकीय प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि का कारण राज्य सरकार द्वारा दूर–दराज के ग्राम व ढ़ाणियों में नवीन राजकीय प्राथमिक विद्यालय व राजीव गाँधी पाठशालाएँ खोलना रहा। बिन्दु वर्ष 2009–10 में राजकीय प्राथमिक विद्यालयों में कमी का कारण समस्त बालिका प्राथमिक विद्यालय

व कुछ सहशिक्षा वाले प्राथमिक विद्यालयों को क्रमोन्नत करना रहा। बिन्दु वर्ष 2000–01 में अराजकीय विद्यालयों की वृद्धि दर अधिक होने का कारण प्रशिक्षित बेरोजगारों द्वारा स्व–रोजगार हेतु विद्यालय खोलना व सरकार द्वारा मान्यता के सरल नियम बनाना आदि रहे। बिन्दु वर्ष 1997–98 में ऋणात्मक वृद्धि का कारण विद्यालय क्रमोन्नत व प्रशिक्षित बेरोजगारों का राजकीय सेवा में जाना रहा है।

शैक्षिक निहितार्थ

प्रस्तुत शोधकार्य में अजमेर संभाग में प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता का अध्ययन समग्र तथा लैंगिक आधार पर किया गया है। शोधकर्ता द्वय के द्वारा किये गये शोध कार्य से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर इस अध्ययन के निम्नलिखित निहितार्थ हो सकते हैं –

1. अजमेर संभाग में प्रारम्भिक शिक्षा स्तर पर लगातार बढ़े नामांकन की वजह से नये प्राथमिक विद्यालय खोलने का दबाव बढ़ा है। वर्ष 2007–08 में समस्त राजकीय बालिका प्राथमिक विद्यालयों को क्रमोन्नत करके बालिका उच्च प्राथमिक विद्यालय बनाये गये। सरकार द्वारा बालिका प्राथमिक विद्यालयों को बालिका उच्च प्राथमिक विद्यालयों में क्रमोन्नत करना सराहनीय कदम है लेकिन इस स्तर के विद्यालयों के महत्त्व एवं इनकी मांग को ध्यान में रखते हुए नये प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए। लेकिन अजमेर संभाग में विद्यालय स्थापना हेतु नीतिगत परिवर्तन लाकर निजी प्रयासों को प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि सर्व शिक्षा अभियान के लक्ष्य को प्राप्त करना सम्भव हो सके।
2. अजमेर संभाग में प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि शैक्षिक विकास की प्रवृति में किसी प्रकार की समरूपता नहीं है। किसी वर्ष में विद्यालयों की उपलब्धता में कमी हुई है तो किसी वर्ष में अधिक वृद्धि हुई है। इससे स्पष्ट होता है कि आरम्भिक स्तर पर शैक्षिक विकास हेतु प्रयासों के लिए किसी प्रकार से योजना बनाकर कार्य नहीं हुआ है। अत: योजनाकारों एवं नीति निर्धारकों के लिए आवश्यक है कि नये विद्यालयों एवं शिक्षकों की उपलब्धता योजनाबद्ध ढ़ंग से सुनिश्चित करें।
3. अजमेर संभाग में बालिका प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में अत्यन्त कम वृद्धि हुई है। सामाजिक एवं जातिगत विविधता और महिलाओं के साथ बढ़ते अपराध तथा बालकों की अपेक्षा बालिकाओं की शिक्षा के प्रति अभिभावकों का उदासीन दृष्टिकोण

व अनेक प्रकार के सामाजिक बन्धनों के कारण सहशिक्षा वाले विद्यालयों में बालिकाओं को पढ़ाने में अभिभावकों में रुझान कम है, वहाँ पर बालिकाओं के लिए अलग से प्राथमिक विद्यालय खोलने को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। राजकीय एवं स्वैच्छिक संस्थाओं को सामाजिक एवं जातिगत विविधता कम करने, महिलाओं के साथ बढ़ते अपराधों को रोकने तथा बालकों की अपेक्षा बालिकाओं की शिक्षा के प्रति अभिभावकों की उदासीनता को दूर करने तथा सहशिक्षा वाले विद्यालयों में बालिकाओं को पढ़ाने के प्रति अभिभावकों में रुझान को बदलने का प्रयास करना चाहिए।

4. अजमेर संभाग में शहरी क्षेत्रों में राजकीय विद्यालयों की उपलब्धता में अराजकीय (निजी प्रशासन) विद्यालयों की वृद्धि के मुकाबले में कमी आ रही है। जो मजदूर वर्ग और कच्ची बस्ती के क्षेत्रों में रहने वाली जनता के लिए परेशानी भरी होगी। अत: केन्द्र तथा राज्य सरकार को कच्ची बस्ती व मजदूर वर्ग के क्षेत्रों में समुचित सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए ठोस कदम उठाने चाहिए और ज्यादा से ज्यादा राजकीय विद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए। निजी प्रयासों को प्रोत्साहित करने के लिए उपयुक्त माहौल निर्माण के साथ-साथ अनुदान प्रणाली का पुनर्प्रबंध करना अपेक्षित है।

संदर्भ

बिर्दी, बिमलेश (1992), *ए स्टडी ऑफ द ग्रोथ एण्ड डेवलपमेन्ट ऑफ द प्राइमरी एजुकेशन इन पंजाब फ्रॉम 1947 टू 1987,* पीएच.डी. (एजुकेशन), पंजाबी यूनिवर्सिटी 1134.

बुच, एम.बी. और सुडामे, जी.आर. (1990), *अर्बन प्राइमरी एजुकेशन इन गुजरात एन इन डेप्थ स्टडी,* द महाराजा सियाजीराव यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा 1136.

देव, महेन्द्र एस. (2012-13), इण्डियन डवलपमेन्ट रिपोर्ट, *इन्दिरा गाँधी इंस्टीट्यूट ऑफ डवलमेन्ट रिसर्च,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन.

गुप्ता, मंजू (2008), *भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास,* के. एस. के. पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रिब्यूटर्स, दरियागंज, नई दिल्ली.

कुकरेती एवं सक्सेना (2004, ब), *प्राइमरी एजुकेशन इन यू.पी.: एन एनेलिटिकल स्टडी,* ग्यान जर्नल ऑफ एजुकेशन, 1(1), 1-7.

कुकरेती एवं सक्सेना (2004, अ), *ड्रॉप आऊट प्रोब्लम्स अमंग ट्राइबल स्टुडेण्ट्स एट स्कूल लेवल,* कुरूक्षेत्र, 52 (11), 26-30.

मयानी, जे.पी. (1989), *ए स्टडी ऑफ हिस्टॉरीकल डेवलपमेन्ट ऑफ प्री प्राइमरी एजुकेशन इन गुजरात,* पीएच.डी. (एजुकेशन), भावनगर यूनिवर्सिटी.

मिश्रा, उपमा (2009), *राजस्थान राज्य की प्राथमिक कक्षाओं में बालिका शाला परित्याग (ड्रॉप आउट) दर : एक प्रवृत्यात्मक विश्लेषण* (2001-06), अप्रकाशित शोध अध्ययन, शिक्षा संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली.

मिश्रा, डी. (1990), *ए स्टडी ऑफ प्री प्राइमरी एजुकेशन प्रोब्लम्स इन कटक,* एम.फिल. (एजुकेशन), रवेन्सा कॉलेज, कटक.

न्यूपा (2006-07), *डिस्ट्रिक्ट रिपोर्ट कार्ड,* नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ एजूकेशनल प्लानिंग एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूदेहली.

पाल, एस. पी. एंड पंत, डी. के. (1995), *स्ट्रेटेजीज टू इम्प्रूव स्कूल एनरोलमेंट रेट इन इंडिया,* जर्नल अ्फ़ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन, 9 (2) 169-171.

प्रधान, जी.सी. (2009), *ए स्टडी ऑन ग्रोथ एण्ड प्रजेन्ट स्टेटस ऑफ एलीमेन्टरी एजुकेशन इन गोवा,* जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन, एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली, 34, (4), फरवरी, 90-112.

प्रकाश, श्री (1996), *भारत में प्रारम्भिक शिक्षा का सार्वजनीनकरण, समस्यायें और संभावनायें,* परिप्रेक्ष्य - शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ, नीपा, नई दिल्ली, 3 (2).

राव, पुल्ला डी. (2004), *डवलपमेंट ऑफ प्राइमरी एण्ड अप्पर प्राइमरी एजुकेशन इन आन्ध्रप्रदेश डयूरिंग 1956-57 टू 1999-2000,* जर्नल्स ऑफ इण्डियन एजुकेशन, 30, (2), अगस्त.

शर्मा, एस.पी. (1977), *ए स्टडी ऑफ द डेवलपमेन्ट ऑफ प्राइमरी एजुकेशन इन देहली फ्रोम 1913 टू 1968,* पीएच.डी. (एजूकेशन), कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी, कुरूक्षेत्र.

शर्मा, अनुसूया (2010), *कोटा संभाग में पारम्परिक संस्कृत शिक्षा के विकास (1990 से 2008-09) का अध्ययन,* अप्रकाशित शोध अध्ययन, वनस्थली विद्यापीठ.

सिंह, के.आई. (1997), *ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ द डेवलपमेन्ट ऑफ प्राइमरी एजुकेशन इन द नॉर्थ-इस्टर्न रीजन ऑफ इंडिया विद स्पेशल रेफरेन्स टू मणिपुर,* पीएच.डी. 414.

सुराणा, अजय (2003), *राजस्थान के एक जिले में शैक्षिण विकास का पार्श्व चित्र 1981-2000, एक अध्ययन,* अप्रकाशित शोध प्रबन्ध (पीएच.डी.), वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली (राज.).

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 2, अगस्त 2015

शोध टिप्पणी/संवाद

मध्य हिमालयी पहाड़ी (कुमाउँनी एवं गढ़वाली) भाषाओं की भाषिक विशेषताएं

राजीव जोशी*

सारांश

भाषाविदों द्वारा भौगोलिक परिस्थितियों को देखते हुए वर्तमान में उत्तराखण्ड नाम से प्रसिद्ध भू-भाग की भाषा को मध्य पहाड़ी कहा जाता रहा है। यह नामकरण सर बेन्स द्वारा किया गया है। उन्होंने हिमाचल की बोलियों के लिए पश्चिमी हिमालयी और नेपाल की भाषा 'नेपाली' के लिए पूर्वी हिमालयी नाम दिया। मध्य हिमालयी के अन्तर्गत दो क्षेत्र आते है जिन्हें कुमाऊँ एवं गढ़वाल नाम से जाना जाता है। चूँकि 'मध्य पहाड़ी' का विस्तार उत्तर में हिमाचल से पूर्व में सिक्किम तक हो सकता है अत: हिंदी की दो प्रमुख बोलियों (भाषाओं), कुमाउनी एवं गढ़वाली के लिए 'मध्य हिमालयी' व्यवहृत करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। कुमाउनी के विद्वान एवं भाषा विज्ञानी प्रो. केशव दत्त रुवाली भी यही धारणा रखते हैं। अत: इस शोधपत्र में इन दोनों बोलियों के लिए 'मध्य हिमालयी' ही व्यवहृत कर विद्वतजनों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है।

गढ़वाल नाम से पूर्व इस भू-भाग का नाम केदारखण्ड था। किसी युग में कई (लगभग 52) गढ़ होने के कारण इसे गढ़वाल कहा जाने लगा। 16वीं शदी के प्रारम्भ में राजा अजय पाल द्वारा इन गढ़ों के एकीकरण के प्रयास किए गये, जिस कारण उन्हें गढ़पाल कहा जाने लगा। यही 'गढ़पाल' कालान्तर में 'गढ़वाल' रूप में व्यवहृत होने लगा।

गढ़वाल के दक्षिण-पूर्व में संलग्न भाग कुमाऊँ नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल में यह 'कुर्मांचल' नाम से प्रसिद्ध था। यहां के चंपावत जिले के समीप कानद्यो (क्रंतेश्वर) नामक पर्वत शिखर है जिसके बारे में माना जाता है कि, विष्णु का कूर्मावतार उस पर तीन

*प्रवक्ता भौतिक विज्ञान, रा.इ.का. हड़बाड़ (बागेश्वर) उत्तराखंड

वर्षों तक रहा। तब से उस पर्वत को कूर्मांचल नाम से जाना जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि, प्रारम्भ में कूर्मांचल के स्थान पर केवल 'कूर्म' नाम प्रचलित था जो सामान्य बोलचाल में 'कुमूँ' रूप में व्यवहृत मिलता है। आगे चलकर साहित्यिक ग्रंथों, ताम्रपत्रों में 'कुमूँ' के स्थान पर 'कमऊ' उसके बाद 'कुमाऊँ' शब्द स्वीकृत हुआ। लोक भाषाओं का जहाँ तक प्रश्न है, लोक भाषाएं संस्कृति की आधार एवं वाहक होती हैं। भाषाओं को व्यवहार में लाए बिना समाज और संस्कृति का विकास कदापि नहीं हो सकता।

मध्य हिमालयी का उद्भव एवं विकास

मध्य हिमालयी की दोनों भाषाओं कुमाउनी एवं गढ़वाली के मूल श्रोत के संदर्भ में कई मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वान इनका मूलाधार दरद, खष या पैशाची से संबद्ध कर इन्हें राजस्थानी की ही एक शाखा बताते हैं। इस स्थापना का आधार इस भ्रांति पर आधरित है कि, इस मध्य हिमालयी क्षेत्र के निवासी *खष*-दरद थे। डॉ. चातक का मानना है कि, *पैशाची* और दरद भाषाओं को लेकर यदि मध्य हिमालयी का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो स्पष्टत: साम्य के बहुत कम आधार मिलेंगे। गियर्सन भी इस बात को मानते हैं कि हिमालय में ज्यों-ज्यों पूर्व की ओर जाते हैं तो भाषा पर दरद-खष का प्रभाव कम होता जाता है। खषों का प्रसार हिमालय में हिन्दकुश से नेपाल तक जरुर था, किन्तु मध्य और पूर्वी हिमालय में वे उतने प्रभावशाली नहीं थे जितने कि पश्चिम में। यदि सभी हिमालयी भाषाओं का मूल दरद या *खष* होता तो उनमें बड़ी समानता होती। ठीक इसके विपरीत *कश्मीरी* आदि दरद भाषाएं *कुमाउनी-गढ़वाली* से पृथक अस्तित्व प्रकट करती हैं। हाँ दरद/*खष* की कुछ विशिष्टताएं इनमें मिलती जरुर हैं-

1. घोष महाप्राण के स्थान पर घोष अल्प महाप्राण ध्वनि का उच्चारण : हि.-दूध!, कु.- दूद, ग.-दूध,
2. अघोष महाप्राण के स्थान पर अघोष अल्प प्राण: हि.-हाथ, कु.-हात्, ग.-हात्, हि.-बाल, कु.-बाव, ग.-बाल।
3. अन्त्य की ह्रस्वत्व की प्रवृत्ति- हि.-अपनी, कु.-आपणि, ग.-आपणि।

इसके अतिरिक्त रूपकात्मक संरचना में भी कश्मीरी के कुछ तत्व दृष्टिगोचर होते हैं। उदाहरण- कश्मीरी जिस प्रकार निश्चय वाचक सर्वनाम तीन हैं-यिह, तिह और सुह, उसी प्रकार मध्य हिमालयी में भी ('य', 'त' और 'उ')- कु., (य, तकम्, उ/ग.) हैं। जबकि अन्य भाषाओं में इस सर्वनाम के दो ही रूप हैं- 'यह' तथा 'वह'।

उपर्युक्त समानता के होते हुए भी दरद/खष को मध्य हिमालयी का स्रोत नहीं माना जा सकता। शब्द समूह, रूपात्मक संरचना एवं वाक्य गठन की दृष्टि से वर्तमान मध्य हिमालयी भाषा का संबंध शौरसेनी अपभ्रंश के साथ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने भी हिमालयी भाषाओं का संबंध शौरसेनी अपभ्रंश से निर्धारित किया है। इस निर्धारण के पक्ष में निम्न् तथ्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं–

1. अपभ्रंश में स्वर विकार की जो प्रवृत्ति दिखाई देती है वह मध्य हिमालयी की दोनों भाषाओं में भी है: सं.–पूजा, अप.–पूज्ज, कु.–पूज, ग.–पुज्ज शौरसेनी में 'णकार' की प्रवृत्ति पायी जाती है हालांकि कुछ स्थानों पर जैसे पिथौरागढ़ की 'सोर्याली' में नकार की प्रवृत्ति भी देखी जा सकती है। इसका कारण बताते हुए प्रो. रुवाली जी बताते हैं कि अल्मोड़ा में शौरसेनी अपभ्रंश बोलने वाले लोग बसे होंगे और पिथौरागढ़ में *पैशाची* प्राकृत बोलने वाले। यह प्रवृत्ति न केवल पिथौरागढ़ के क्षेत्र में बल्कि कुमाऊँ की 'खशपर्जिया बोली' में भी दलित वर्ग में दिखायी देती है। संभवत: नकार की यह प्रवृत्ति जातीय संकोच के परिणामस्वरूप स्वर संकोच के रूप में परिणित हो गयी है।
2. शब्द समूह की दृष्टि से शौरसेनी अपभ्रंश और इन हिमालयी भाषाओं में समानता है– अप.–भूअल (बहुत नीचा खड्ड), कु.–भ्योव/भ्योल, ग.–भ्याल। अप.–उत्तुणों (उद् बदन), कु. उताण, ग.–उताण। अप.–ओगल्लो (जुगाली), कु.–उगार, ग.–जुगार। अप.–भल्लू (भालू), कु.–भालु, ग.–रिख/भालू।
3. शौरसेनी अपभ्रंश के समान ही मध्य हिमालयी में भी दो वचन तथा दो लिंग विद्यमान हैं।
4. भूतकालिक कृदंत 'इ' हैं–अप.–करि, कु.–करि बेर
5. प्रश्नवाचक सर्वनाम में भी समानता दिखाई देती है। सं.–किम्, अपभ्रंश में 'कि' हो गया है जो कुमाउनी एवं गढ़वाली में 'कि' तथा 'क्या' है। उदाहरण:–कु. – कि लाछा? ग.–क्य ल्हे?।
6. संस्कृत के गुणवाचक सर्वमान ईदृश, कीदृश और तादृश ने अपभ्रंश में जो रूप लिया वह कुमाउनी एवं गढ़वाली में कुछ ध्वनि परिवर्तन के साथ मिलते हैं।

   सं.–ईदृश, अप.–अइस, कु. यस, ग.–इन ह्वे।

   सं.–किदृश, अप.–कइस, कु. कस, ग.– कनके/कि।

   सं.–तादृश, अप.–तइस, कु.–तस, ग.–तनि ह्वे।

भरत मुनि भी नाट्य शास्त्र में लिखते हैं कि हिमवत सिन्धु और सौवीर में 'उकार' बहुला भाषा का प्रयोग होता था। अनुमान है कि यह 'उकार' बहुल भाषा अपभ्रंश ही रही होगी। मध्य हिमालयी की इन दोनों भाषाओं की ध्वनि-संरचना को यदि देखा जाय तो वह राजस्थानी, गुजराती एवं मराठी से भी नैकट्य रखती है। 'ण', 'ड़' तथा 'ळ' ध्वनियां राजस्थानी तथा मध्य हिमालयी में समानत: पायी जाती हैं।

राजस्थानी भाषा से हिमालयी में एक महत्वपूर्ण समानता यह पायी जाती है कि, यहाँ पद-मध्य महाप्राण ध्वनि की प्राणता प्राय: पदादि व्यंजन में अन्तर्भुक्त हो जाती है। जैसे- 'लहर' का ल्हैर, जहर का ज्हैर।

'न', 'ण' की प्रवृत्ति भी राजस्थानी की भाँति ही है। राजस्थानी की तरह यहाँ भी कर्ता में 'न' कर्म में 'कू' करण में 'से' आदि परसर्ग (कारक चिह्न) हैं। परन्तु मध्य हिमालयी में दूसरे परसर्ग भी हैं जो राजस्थानी में नहीं मिलते। दोनों भाषाओं में सहायक क्रिया 'छे' पायी जाती है। भूतकालीक कृदन्त वाले रूप दोनों में 'यो' प्रत्यय वाले पाये जाते हैं। परन्तु इस साम्यता से यह नहीं कहा जा सकता कि मध्य हिमालयी का उद्भव राजस्थानी भाषा से हुआ है। सहायक क्रिया 'छे' को यदि देखें तो यह क्रिया राजस्थान के अतिरिक्त दरद, बंगला और कई पूर्वी बोलियों में मिलती हैं। इसी प्रकार 'णकार' की प्रवृत्ति या 'स' का 'ह' में परिवर्तन गढ़वाल-कुमाऊँ के एक क्षेत्र में प्रचलित है किन्तु यह परिवर्तन पूर्वी बंगला, सिन्धी, पंजाबी, लहंदा, मराठी, असमी में भी दृष्टिगोचर होता है।

वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि राजस्थानी का उद्गम जिस शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है उसी के एक रूप से मध्य हिमालयी की भाषा का स्रोत भी फूटा होगा।

मध्य हिमालयी की शब्द संपदा पर यदि दृष्टि डाली जाए तो मध्य हिमालयी के शब्द समूहों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. भारतीय आर्य भाषाओं के शब्द।
2. भारतीय अनार्य भाषाओं के शब्द।
3. देशज एवं स्थानीय शब्द।
4. विदेशी शब्द।

भारतीय आर्य भाषाओं के शब्द

1. **तत्सम/अर्द्धतत्सम शब्द:** कुमाउनी एवं गढ़वाली में संस्कृत के कई शब्द अपने मूल रूप में प्रयुक्त होते हैं उदाहरणार्थ- कर्म, धर्म, कुशल, ज्ञान, ध्यान, अखण्ड, अन्न, कठिन, कमण्डल, कथा, कष्ट, कंकण, गीत, गुण, चक्र, चंडाल, चंदन, तंत्र, तर्पण, तिल, तीर्थ, द्वापर, ईष्ट, भॅर (तालाब), माया (प्रेम), मंत्र, मंडप आदि।

कुछ संस्कृत के शब्द तो यहाँ कि कुछ बोलियों में अपने मूल अर्थ में ही विकसित दिखाई देते हैं जबकि कुछ भाषाओं में दूसरे अर्थ के रूप में विकसित हुए हैं। जैसे:- रवाल्टी में प्रयुक्त 'घीण'-घृणा शब्द को लिया जा सकता है। यह शब्द मध्य हिमालयी के दोंनों प्रमुख बोलियों में जहाँ घृणा के अर्थ में प्रयुक्त होता है वहीं आज भी रवाई में अपने मूल संस्कृत अर्थ 'दया' में प्रयुक्त किया जाता है। इसी प्रकार संस्कृत का 'उत्तर' शब्द, यह शब्द उद् (ऊपर)+तर प्रत्यय के संयोग से बना है जो अधिक ऊँचा तथा ऊपर का के अर्थ को अभिव्यक्त करता है किसी परिवेश में यह अधिक अच्छा के संदर्भ में भी प्रयुक्त होता है। गढ़वाली में यह शब्द कुछ परिवर्तित होकर इस अप्रचलित अर्थ में भी प्रचलित है। जैसे:-'तू मैं से उतर नी छई'-तू मुझसे बढ़कर नहीं। कुमाउनी-गढ़वाली में तत्सम शब्दों की संख्या अधिक नहीं है।

2. **तद्भव शब्द:** मध्य हिमालयी की दोंनों भाषाओं में उच्चारण की सुविधा एवं सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण तद्भव शब्दों की संख्या अत्यधिक है। मध्य कालीन आर्य भाषा से आगत शब्द इस प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर हिमालयी क्षेत्र में आकर अपने ढंग से विकसित हुए हैं जैसे:-

हस्त-हत्थ-हाथ।
अग्रे-आगे-आघिल।
घृत-घ्यू (घी)
घर्म-घम्म्-घाम (धूप)
डनिद्र-उणदो-उणत।
चोक्ष-चोखू-चोख।
अक्षर-आंखर।
गोस्वामी-गोस्यूं-गुसें।
अक्षोर-अखोड़।
गर्गर-गागर।
दरिद्र-दलिदर।
गौर-गोरो-ग्वर।
स्थूप-थुपुड़ो-थुपुड़।
शुक्ल-सुकिल।
ब्राह्मण-बामण।

3. **पाली-प्राकृत-अपभ्रन्स:** इन भाषाओं से भी शब्द मध्य हिमालयी में आये हैं जैसे- रीस्सा (प्रा.) रीस (कु.)।

उब्भ–उब्बो (कु. एवं ग.)
मउलई–मौलणो/मौलण (कु. एवं ग.)
पंचास (पाली), पोथी (अप0), सुवा (पाली)।

2. **भारतीय अनार्य भाषाओं से आगतः** आग्नेय एवं द्रविड़ परिवार के आर्येतर शब्द अनार्य कहलाते हैं। गढ़वाल कुमाऊँ का हिमालयी क्षेत्र आग्नेय वंशी एवं द्रविड़, कोल, किरात, भील, सकहूण, द्रविड़ खष आदि कई अनार्य जातियों का आवास रहा इसलिए इन आर्य जातियों के कई शब्द यहाँ की भाषा में घुल–मिल गए हैं। जैसे– कुड़ (मकान), डान्–डॉडा (चोटी), गिज (मुँह), गाड़(नदी), बॉगो (टेढ़े), भिकान (मेंढक),काफल, बोक्कि आदि कोल किरात शब्द हैं। मुंडा जाति का–चकन्दर (चूहे की एक जाति), द्रविड़ परिवार के– खूट, उखल, खवेष (ग0) (बदसूरत), खदरो (आला), दोखु (ऊन का वस्त्र), नस्यूड़ (हल का भाग), छान् (झोपड़ी) आदि शब्द।

3. **देशज एवं स्थानीय शब्दः** कुमाउनी एवं गढ़वाली में देशज शब्दों की संख्या बहुत अधिक है। प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण इस मध्य हिमालयी क्षेत्र की भाषा में विकसित कई देशज शब्द नदी–नालों, झरनों, पशु–पक्षिओं, जीव–जन्तुओं की ध्वन्याकरण एवं प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण और विवरण वैषिष्ट्य की देन है। जैसे– फटाफट, चमाचम, लमालम, कलकली, किकरियाण (ऊनी कपड़े जलने की गंध), छणमण, दणमण आदि कई शब्द देशज शब्द हैं।

4. **विदेशी शब्दः** बर्मा–तिब्बत से व्यापार, अंग्रेजों के शासन एवं मुगल एवं तुर्कों से संबंध के कारण कई शब्द इन भाषाओं से मध्य हिमालयी में रच–बस गये हैं।

तिब्बत–बर्मी– फुंगई(गगरी), लुकुड़ (कपड़ा)।
अरबी– अकल, इनाम, ऐब, किताब, खबीष।
फारसी– गरीब, दाग, गजब, फजित, फरमैष, हाइ–तोबा।
तुर्की– कैंचि, चक्कू, कुली, लाष।
अंग्रेजी– अस्पताल, इस्कूल, कम्पोडर।
पुर्तगाली– अचार, आरपीन, इल्मारि, कंटर, मिस्तिरी आदि।
सूक्ष्म अर्थभेद (शब्द वैशिष्ट्य)–

मध्य हिमालयी की स्थानीय शब्दावली सूक्ष्म अर्थ भेद की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थभेद की जो अद्‌भुत प्रवृत्ति एवं शक्ति मध्य हिमालयी भाषा में मिलती है वह किसी अन्य भाषा के शब्दों में सर्वथा अप्राप्य है। इन शब्दों द्वारा न केवल वर्णनों में सजीवता एवं चित्रात्मकता लाई जाती है बल्कि ध्वनि एवं गंध के भी सजीव चित्र खीचे जा सकते हैं। इन

शब्दों द्वारा सूक्ष्म मनोभावों एवं क्रियाओं को भी अभिव्यक्त किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए हिंदी में 'दर्द' के भाव को अभिव्यक्त करने के लिए दर्द या पीड़ा शब्द मिलता है, परन्तु यहाँ अलग-अलग प्रकार के दर्द के लिए अलग-अलग शब्द उपलब्ध हैं। जैसे- ग.-मुंडारो, कु.- मुना (सिर दर्द), ग.-दंताल, कु.- दताव (दाँत का दर्द), ग.-चरे, कु.-चौरि (कटे का दर्द), चड़क (कभी उठने और कभी कम होने वाला दर्द), चीस (चुभन का दर्द), टैणि (नस का दर्द), चसक (कमर का दर्द), झुरयाट्/कसमसाट (अर्न्तमन का दर्द), चिमराट (मिर्च लगने का सा दर्द)।

इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की गंधों के लिए मध्य हिमालयी में प्रत्ययों आदि से रचे अनेक शब्द हैं। गंधों के लिए मध्य हिमालयी का शब्द वैशिष्ट्य दृष्ट्व्य है- बसैनि/बसाण (बासी भोजन की), लूरेन/लूराण (बच्चे से दूध तेल की), चिलखाण (घी की), तैलेन/तैल्याण (तेल की), खोंखेनि/कोखाण (पुराने चावलों की), पदैनि/पदाण (अपान वायु की), गुवैन (मल की), चुरैन (मूत्र की), धूपैन (धूप की), किड़ैन (बाल या ऊन जलने की), भुटैनि/भुटाण (छौंक की), पिपरैन/पिपराण (प्याज आदि की आँख में लगने वाली गंध), हन्तरैन/कुतराण (कपड़ा जलने की)।

कुछ शब्दों में ऐसा सूक्ष्म अर्थ भेद रहता है कि उसका स्पष्टीकरण अन्य शब्दों के द्वारा लगभग असंभव हो जाता है। उदारण के लिए:- गढ़वाली में प्रयुक्त शब्द 'कतमत' और 'कै-बै' दोनों एक प्रकार की हड़बड़ाहट के लिए प्रयुक्त होते हैं। कुमाउनी में इस हेतु 'अलबलाट' शब्द प्रयक्त होता है। गढ़वाली में प्रयुक्त दोंनों शब्दों की अर्थाभिव्यक्ति में परिस्थिति एवं भावजन्य अन्तर है। 'कतमत' जहाँ वासनाजन्य हड़बड़ाहट को अभिव्यक्त करता है वहीं 'कै-बै' किंकर्तव्य विमुढ़ता एवं बिना सोचे समझे कार्य करने की हड़बड़ाहट को ध्वनित करता है। गढ़वाली में यदि कहेंगे कि 'वे सणी कतमती लैगे' तो वासनाजन्य भाव विशेष की स्पष्ट ध्वनि का आभास हो जायेगा। यदि कहेंगे कि 'सो कै-बै करी घर ओणो छयो' तो इस वाक्य से किंकर्तव्य विमुढ़ता और बिना सोचे समझे जल्दी-जल्दी काम करने की प्रवृत्ति का पता लग जायेगा।

कुमाउनी में अलग-अलग प्रकार की ध्वनियों के लिए अलग-अलग शब्द उपलब्ध हैं जो स्वयं में ध्वनियों के बिम्ब को अभिव्यक्त करने की सामर्थ रखते हैं। जैसे:- टनटनाट (धातु पर चोट की आवाज), छणमाणांट (झाड़ी आदि पर चोट की), खणमाणांट (खोखली वस्तुओं के टकराहट की), गुणमुणांट (दो या दो से अधिक लोगों की धीमे स्वर में बोलने की), मुणमुणांट (अकेले व्यक्ति के धीरे-धीरे बोलने की), तड़तड़ाट (तरल पदार्थों के लगातार गिरने की), टपटपाट (तरल पदार्थों के बूदों के गिरने की), ठकठकाट

(ठठेरे की या लकड़ी पर चोट की), सकसकाट (धीमे स्वर में रोने की), घरघराट (बेलनाकार वस्तु के घर्षण अथवा बादलों की)। ये शब्द स्वयं में ध्वनि विशेष की विशेषता को अभिव्यक्त करने की पूर्ण सामर्थ्य रखते हैं।

मध्य हिमालयी भाषा में इतनी सूक्ष्म अर्थ भेदक क्षमता है कि उच्चारण भेद मात्र से शब्द के अर्थ में भारी परिवर्तन हो जाता है। जैसे:- खण् (खाना), खाण (खान), बड़ि (दाल पीसकर बनने वाली), बड़ी (बड़ी), काल् (मूर्ख या कान न सुनने वाला), काल (मृत्यु), इसी प्रकार खाल (चमड़ा), खाल् (पैर का एक प्रकार का दर्द), खाल (तालाब), मोल (कीमत), मोल/मोव/पौष (गोबर की खाद), रात् (लाल), रात (निशा)।

मध्य हिमालयी के कुछ शब्दों में चाहे वे हिन्दी के शब्द ही क्यों न हों लक्षणा एवं व्यंजना द्वारा भी अर्थ भेद की अभिव्यक्ति होती है। जैसे 'तैकू कल्याण करा तब ऊ ठीक रास्ता पर आलो' यहा पर कल्याण का अर्थ भलाई न होकर लक्षार्थ मारना है। इसी प्रकार कुमाउनी में उदाहरण दृष्टव्य हैं- 'मैं ले त्यर पातड़ खोल द्यून' यहॉ पर पातड़ शब्द का अर्थ 'पोल' है। कुछ शब्द मध्य हिमालयी में ऐसे भी हैं जो यथास्थान से अन्यत्र व्यंजनार्थ प्रयुक्त होते हैं। जैसे- 'उज्याड़' (दूसरे के खेत में पशुओं का चुगना), यदि यह शब्द इस प्रकार प्रयुक्त होता है कि 'तैक गोरुल उज्याड़ खाय' अर्थात् उसकी गाय ने 'उज्याड़ खाया'। परन्तु यही शब्द 'ब्वारि उज्याड़ खां' के रूप में प्रयुक्त हो तो 'उज्याड़' के अर्थ में भेद हो जाता है। यहॉ उज्याड़ कदाचार को अभिव्यक्त करता है।

हिन्दी में प्रयुक्त 'जाने भी दो' या 'परे रहने दो' या 'छोड़ो' के लिए भी मध्य हिमालयी में अद्‌भुत शब्द प्रयुक्त होते हैं। कुमाउनी में इस हेतु बज्या अथवा 'पलि फुक' शब्द प्रयुक्त होता है साधारणतया इसका अर्थ जरा दूर जाकर आग फूँकने से भी है। परन्तु यह शब्द- युग्म 'जाने भी दो' के अर्थ में ही बहुतायत प्रयुक्त होता है इसी हेतु मध्य हिमालयी की दूसरी भाषा गढ़वाली में 'फुंडु फूँका' का प्रयोग होता है जिसका अर्थ है फिर से जलाओ। किन्तु गढ़वाली में यह शब्द युग्म 'जाने भी दो!' के भाव में ही प्रयुक्त होता है।

मध्य हिमालयी के खण्ड्य स्वर- कतिपय ह्रस्व एवं दीर्घ स्वनिमों को छोड़ दिया जाए तो मध्य हिमालयी के स्वर व्यंजन वही हैं जो हिन्दी में हैं।

स्वर- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ-11

अयोग वाह अँ, अं, अः-3

व्यंजन- क, ख, ग, घ, ङ,
च, छ, ज, झ, ञ,

ट, ठ, ड, ड़, ढ, ढ़, ण,
त, थ, द, ध, न,
प, फ, ब, भ, म,
य, र, ल, व,
श, ष, स, ह–35

अनुनासिक स्वर– अँ – हँसण/हँसणु, अँगुलि, अँग्वाव।
आँ– आँसु, साँस, फाँसि, पराँड़।
इं– खिंचण/खिंचणु
ईं– सींक, खींच।
उँ– मुँगर, डुँग, जुँग।
ऊँ– स्यूँत।
एं– केंचि।
ऐं– दैंत, मैंस।
ओं– होंठ।
औं– नौंणि, पौंड़।

संस्कृत शब्दों में 'ष या 'स' के साथ जहॉ अनुस्वार होता है गढ़वाली उच्चारण में उनमें 'ग' जुड़ जाता है। यह प्रवृत्ति कुमाउनी में नहीं है।

'ढ़' ध्वनि कुमाउनी में प्रायः 'ड़' में परिवर्तित हो जाती है। यथा– बूड़ी– बुड़ि (कुमाउनी)

दाढ़ी – दाड़ि (कुमाउनी)

फिर भी ढ़ एवं ड़ दो स्वतंत्र स्वनिम हैं क्योंकि कड़ई–बर्तन तथा कढ़ाई (काढ़न)

स्वारगम– मध्य हिमालयी भाषाओं में उच्चारण की सरलता के लिए स्वारगम होता है जैसे–

1. आदि स्वारगम– स्नान–अस्नान, स्कूल–इस्कूल, स्टेशन–इस्टेशन।

2. मध्य स्वारगम– जन्म–जनम, धर्म–धरम, शुक्ल–सुकिल आदि।

स्वराघातः– मध्य हिमालयी की दोनों भाषाओं कुमाउनी एवं गढ़वाली में संगीतात्मक स्वराघात की अपेक्षा बलात्मक स्वराघात अधिक पाया जाता है। बलाघात के कारण शब्द का रूप परिर्वतित हो जाता है अथवा विशेष स्वर पर बल देने के कारण अर्थान्वयन भिन्न हो जाता है– कालो (काला), का लो (मूर्ख), तथा 'मैं ल्यूंल' में यदि 'मैं' पर जोर दिया जाय तो अर्थ 'मैं ही' हो जाता है।

स्वरालोप- उच्चारण सौकार्य के लिए मध्य हिमालयी में कुछ स्वरों का लोप हो जाता है जैसे अहंकार का 'हंकार', 'अनाज' का 'नाज', 'संक्रांति' का 'संकरात', 'घृर्णा' का 'घीर्ण' आदि।

स्वर विपर्यय- मध्य हिमालयी की भाषाओं में उच्चारण की सुविधा के लिए स्वरों के स्थान बदलने की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है जैसे-'बिन्दु' का 'बूँद', 'उंगली' का 'आंगुल' आदि।

संयुक्त स्वर- आधुनिक आर्य भाषाओं के समान ही मध्य हिमालयी में भी कहीं-कहीं स्वरों का संयोग पाया जाता है परन्तु कहीं-कहीं उचारण से अर्थ में भिन्नता भी आ जाती है। जैसे- 'देउ' (देव), 'द्यो' (बारिष), 'बऊ' (तैरना, बालू), 'बौ' (भाभी), 'लैई' (सरसों की प्रजाति), 'लै' (लिए), आदि।

उपर्युक्त से एक बात तो स्पष्ट है कि मध्य हिमालयी की शब्द संपदा में जो क्षमताएँ हैं वे किसी अन्य भाषा में नहीं दिखाई देती। मध्य हिमालयी पहाड़ी की ये भाषाएँ यहाँ की समृद्ध संस्कृति की आधार एवं संवाहक हैं। इन भाषाओं को व्यवहार में लाए बिना समाज और संस्कृति का विकास कदापि नहीं हो सकता। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि मध्य हिमालयी कि इस भाषिक क्षमता का लाभ तो हमारी राष्ट्र भाषा हिन्दी भी उठा सकती है। यदि मध्य हिमालयी की भाषाओं के मानकीकरण की संक्षिप्त शब्दों में बात की जाय तो यह तभी संभव है जब मध्य हिमालयी ये दोनों भाषाएं शब्दों के परस्पर विनिमय को स्वीकार कर, हिन्दी के निकट आ जाएँ। यदि हिन्दी भाषा भी हमारी इन कुमाउनी एवं गढ़वाली की शक्तिशाली एवं समृद्ध शब्द संपदा को ग्रहण कर पाये तो मानकीकरण का कार्य और अधिक सरल हो जायेगा। इसके लिए मध्य हिमालयी को भी रूप भेदों के संबंध में एकरूपता के लिए विविधता के मोह को त्याग कर वृहद प्रयास करने होंगे।

संदर्भ

गढ़वाल का इतिहास, पं. हरिकृष्ण रतूड़ी, पृ.2

मध्य पहाड़ी की भाषिक परंपरा और हिंदी, डा. गोविन्द चातक, पृ.14

वही, पृ. 18

हिंदी भाषा का इतिहास, डा. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 48

कुमाउनी भाषा और संस्कृति, प्रो. केशाव दत्त रुवाली, पृ. 30

हिमवत्सिंधु सौवीरान् येन्यदेषान् समाश्रिताः डकार बहुला नित्यं भाषा प्रयोजनेत। (नाट्यशास्त्र)

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 2, अगस्त 2015

चिंतक और चिंतन

राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के परिप्रेक्ष्य में डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचार

जितेन्द्र सिंह गोयल*

सारांश

शिक्षा राष्ट्र के विकास एवं नव निर्माण का प्रमुख साधन रही है। इसके अभाव में राष्ट्रीय विकास की बात करना रेत से महल का निर्माण करना है। डॉ. कलाम ने शिक्षा को अपने विचार का केन्द्र बनाया है। उनके अनुसार ''देश केवल कुछ लोगों के महान होने से महान नहीं होता, बल्कि इसलिए महान होता है कि उस देश में हर कोई महान होता है।'' अत: युवाओं को शिक्षा में श्रेष्ठता प्राप्त करनी चाहिए और उन्हें नैतिक मूल्यों तथा समाज कल्याण की भावना के साथ मनुष्य बनना चाहिए। युवाओं के समन्वित तथा केन्द्रित प्रयास भारत को एक विकसित देश बनाने की चुनौती को पूरा कर सकते हैं। इसके लिए अदम्य उत्साहपूर्ण जन संसाधन की आवश्यकता होगी जिसका कार्यभार शैक्षिक केन्द्रों को ग्रहण करना चाहिए। सफलता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्वप्न अवश्य होना चाहिए। उन्होने कवि संत तिरुवल्लुवर द्वारा रचित दोहे का उल्लेख किया है दोहा इस प्रकार है:- ''वेल्लथ थनैया मलारनितम मानधर्थम उल्लथ थनेया थुयारवू।'' अर्थात नदी या झील की गहराई एवं जल की स्थिति जो भी हो लिली हमेशा बाहर निकलता है और खिलता है इसी प्रकार इच्छा शक्ति रखने वाला व्यक्ति लक्ष्य प्राप्ति में अवश्य सफल होता है। चाहे उसे प्राप्त करना प्रत्यक्ष रूप से असम्भव प्रतीत हो।

प्रस्तावना

ज्ञान-विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में विदेशी अनुसंधानों एवं खोजों पर आश्रित भारत को यदि अपने अतीत की गौरवशाली अवस्था एवं स्थिति को पुन: प्राप्त करना है तो आयातित शैक्षिक चिन्तन के प्रत्यय एवं सकल्पनाएं त्याग कर स्वयं की मौलिक शैक्षिक व्यवस्था

*सीनियर रिसर्च स्कॉलर (शिक्षाशास्त्र विभाग) लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
ई-मेल: jitendrago@gmail.com

विकसित करनी होगी-अपनानी होगी। हमारी शिक्षा व्यवस्था पर भारतीय प्रतिभा और साधना परिलक्षित होनी चाहिए। आज जब समूचा विश्व, ब्रह्माण्ड के अन्य ग्रहों पर भी जीवन को तलाशने में सक्षम होता जा रहा है, तब हमें भी ज्ञान और विज्ञान को अपने जीवन लक्ष्य एवं राष्ट्र के विकास के साथ जोड़ने की आवश्यकता है। बढ़ते आधुनिकतावाद से प्रभावित भारतीय मस्तिष्क प्रतिभा पलायन द्वारा भारत के निर्माण में अपनी भूमिका पहचानने में - समझने में असमर्थ-सा लगता है।

कई प्रयासों की अविराम श्रृंखला के द्वारा वर्तमान भारत की शिक्षा व्यवस्था को समयानुकूल एवं प्रासंगिकता प्रदान करने के लिये लगातार प्रयत्न किये जा रहे हैं। आज इसी श्रृंखला में डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जिन्हें बच्चे प्यार से 'काका कलाम' कहते हैं, के शैक्षिक विचार भारत के पुनर्निर्माण में सशक्त योगदान दे सकते हैं। विकसित राष्ट्र के रूप में भारत को प्रतिष्ठित करने की तीव्र लालसा से युक्त डॉ. कलाम अपने उत्साही विचारों द्वारा हर भारतीय युवा मन को आंदोलित करते हुए उनको सही दिशा देने में सक्षम व्यक्तित्व के रूप में उभरे हैं। विकसित राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित होने के लिये भारत को अभी कई पड़ाव तय करने हैं। इसके लिये विभिन्न क्षेत्रों में विशेष अभियान एवं पुनर्निर्माण हेतु ठोस एवं उपयुक्त प्रयत्न ही समीचीन होंगे।

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में उन्नति की आकांक्षा रखता है। व्यक्ति से ही समाज का उत्थान संभव है। समाज तथा राष्ट्र का आपसी संबंध एक दूसरे के विकास में पूरक के रूप में है। व्यक्ति की उन्नति का तात्पर्य यह है कि वह अपने जीवन स्तर को अविराम गति से उच्च धरातल पर स्थापित करने का प्रयास करे। इसी परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि ज्ञान अपने में स्वयं कोई लक्ष्य नहीं हो सकता है बल्कि उसका लक्ष्य है जीवन को अधिक उच्च धरातल पर स्थापित करना। वर्तमान भौतिकवादी मानस से आबद्ध मानव अपनी आदर्श परम्पराओं को, नैतिकता को, तिलांजलि देकर भ्रष्टाचार, अकर्मण्यता, धन लोलुपता एवं स्वार्थपरता की ओर द्रुत गति से बढ़ता चला जा रहा है। राजनीतिक अपराधीकरण के कारण आज योग्य एवं कुशल नेतृत्वकर्ताओं का अभाव समाज को व्यथित कर रहा है। विज्ञान और तकनीक का प्रयोग बढ़ रहा है, आवश्यकता यह है कि तकनीक की उद्यमशीलता के साथ मानवता, सहानुभूति, दया एवं संवेदना जैसे मानवीय मूल्यों को जोड़ा जाए; जो 'वास्तविक' प्रगति को प्रदर्शित कर सके।

उपर्युक्त विज्ञान-तकनीक तथा मानवीय मूल्यों के संगम के लिये एक ही उपाय कारगर हो सकता है और वह उपाय है उचित शिक्षा व्यवस्था की रचना तथा उसकी स्थापना। वर्तमान शिक्षा प्रणाली व्यक्ति की उपभोक्तावादी मानसिकता को खाद-पानी देने के अतिरिक्त और कार्य करती नहीं दिखती। यह प्रणाली स्वस्थ मानसिकता के

विकास में असमर्थ है। आज आवश्यकता है कि शिक्षा प्रणाली द्वारा विकसित किये गये लोग 'साक्षर' की नहीं बल्कि 'शिक्षित' की भूमिका समाज में निभा सकें। आज की अनैतिकता में शिक्षाप्राप्त 'साक्षर व्यक्ति' भी उतना ही जिम्मेदार है जितना कि एक 'नासमझ' 'अनपढ़' या कई मायनों में देखें तो शायद उनसे भी अधिक।

भारत का पुनर्निर्माण ऐसी शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से ही संभव है जो व्यक्ति की उपलब्धियों का मापदण्ड केवल 'उपाधियों' को ही न रखे बल्कि उसे आत्मनिर्भर बनाकर बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक प्राणी के रूप में भी बनाये-बचाए रखे। ऐसा व्यक्ति ही राष्ट्र के विकास में अपनी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चत कर सकेगा। राट्र के पुनर्निर्माण में, जिन विभिन्न क्षेत्रों की भागीदारी आवश्यक है, उनमें शैक्षिक क्षेत्र की उन्नति को प्राथमिकता देना आवश्यक है। शिक्षा के द्वारा ही वैश्वीकरण के युगानुरूप संपूर्ण विश्व में मानवता, सहिष्णुता, अहिंसा, त्याग एवं विश्व बंधुत्व सदृश्य विशिष्ट मूल्यों को सम्प्रेषित किया जा सकता है।

भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में ऐसी शिक्षा की प्रबल आवश्यकता है जो भौतिक आवश्यकता के साथ-साथ राष्ट्रीय एकता, समरसता, अखण्डता, की सुरक्षा करने में सक्षम हो।

सम्पूर्ण विश्व को एक मंच पर लाने की आकांक्षा सभी के मन में पल रही है। डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक विचार निश्चित रूप से वर्तमान भारत की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति में समर्थ हो सकते हैं।

शिक्षा और राष्ट्र के पुनर्निर्माण के विभिन्न पक्षों पर डॉ. कलाम के उद्‌गार और योजनाएं इतनी आन्दोलनकारी हैं कि वे शिक्षा जगत के आमूल-चूल परिवर्तन करने में रामबाण सदृश्य होंगी। आज की दिग्भ्रमित और 'उपाधियों की संग्रह प्रणाली' जैसी शिक्षा व्यवस्था को लक्ष्योन्मुख करने तथा नवीन दिशा दिखाने में कलाम जी के शैक्षिक विचार सचमुच ही परिवर्तनकारी सिद्ध होंगे। उनका चिन्तन और कृतित्व राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के शैक्षिक पक्ष को पुष्ट करते हुए शिक्षा जगत में नयी पहल का श्री गणेश करने वाला सिद्ध होंगा, जो विभ्रम की स्थिति से उबार कर 'सा विद्या या विमुक्तये' की सूक्ति पर खरा उतरेगा।

समस्या का चयन

समस्या आविष्कार/अनुसंधान की जननी है। शोध अध्ययन की मूल समस्या को अधोलिखित ढंग से उल्लिखित किया जा सकता है–

''राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के परिप्रेक्ष्य में डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचारों का अध्ययन''

अध्ययन के उद्देश्य

अध्ययन को आयाम देने के लिये निम्नलिखित उद्देश्यों को दृष्टिगत किया गया है–

(क) शिक्षा की परिभाषा के संदर्भ में डॉ. कलाम के विचारों का अध्ययन करना।

(ख) शिक्षा के उद्देश्य के संबंध में डॉ. कलाम के विचारों का अध्ययन।

(ग) विद्यालयी पाठ्यक्रम के संबंध डॉ. कलाम के विचारों को आलोकित करना।

(घ) शिक्षक, छात्र व शिक्षण विधियों के संबंध में उनके विचारों को जानना और उनकी व्याख्या करना।

चयनित समस्या के समाधान हेतु प्रयुक्त अनुसंधान विधि

प्रस्तुत लघु शोध अध्ययन 'राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के परिप्रेक्ष्य में डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचारों का अध्ययन' को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से वर्णनात्मक व खोज विधि को अपनाया गया है। प्रस्तुत शोध कार्य में अध्ययन हेतु सामग्री संकलन स्रोत के रूप में डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम पर लिखी गई पुस्तकों, समीक्षात्मक ग्रन्थों और लेखों, संबंधित शोध प्रबंधों आदि का भी अध्ययन किया गया है।

डॉ. कलाम और शिक्षा

डॉ. कलाम के अनुसार शिक्षा एक शक्तिशाली तथा विकसित राष्ट्र का स्तम्भ है। अत: वर्तमान आवश्यकतानुरूप शिक्षा बहुउद्देशीय होनी चाहिए।

डॉ. कलाम के अनुसार, ''शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक आर्थिक एवं आध्यात्मिक पहलुओं का विकास किया जाता है।''

- शिक्षा ज्ञान समृद्ध समाज का आधार है।
- शिक्षा मात्र सैद्धान्तिक न हो बल्कि व्यावहारिक एवं व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाने में सक्षम हो।
- शिक्षा व्यक्ति को बौद्धिक कार्यकर्ता बनाती है।
- शिक्षा ज्ञान का संक्षरण, संवर्धन व प्रसार करती है। अत: गुणवत्तापूर्ण शिक्षा व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के विकास की आधारशिला है।
- शिक्षा बच्चो को जीवन के विभिन्न दृष्टिकोणों की कला सिखाने में समर्थ हो।
- शिक्षा द्वारा ही बौद्धिक समाज का निर्माण सम्भव है।
- प्राचीन काल में भारत विद्या का महान केन्द्र था। नालंदा में तीस देशों के विद्वान वेद, तर्कशास्त्र, व्याकरण, धार्मिक दर्शनशास्त्र, खगोल विज्ञान चिकित्सा तथा गणित का अध्ययन करते थे। भारत को पुन: वह गौरव प्राप्त होना चाहिए।

- शिक्षा राष्ट्रीय विकास की धुरी है परन्तु भारत में शिक्षा पर राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद का 3.8 प्रतिशत ही खर्च होता है। अशिक्षा को देखते हुए गम्भीर प्रयास की आवश्यकता है।
- उनके अनुसार यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि निम्न आय वर्ग के लोग भी शिक्षा के खर्च को वहन कर सकें।
- उपयुक्त शिक्षा गरिमा तथा आत्मसम्मान की भावना का पोषण करती है।
- शिक्षा ज्ञान के क्षेत्र में एक नया आयाम प्रदान करने में सक्षम हो। ''ज्ञान एक ऐसा हथियार है जो विनाश से बचाता है, यह ऐसा आंतरिक किला है जिसे दुश्मन भी भेद नहीं सकते।''
- सभी को साक्षर बनाना तथा शिक्षा तक सभी की पहुँच सुनिश्चित करना किसी भी राष्ट्र के लिए सही मायने में विकसित बनने की बुनियादी जरुरत है।
- शिक्षा विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट प्रतिभा के धनी ऐसे लोगों का विशाल आधार तैयार करने में मददगार साबित होगी किसी भी देश के लिए अमूल्य संसाधन होते है।

शिक्षा वर्षों की सभ्यता का खजाना है। राष्ट्रीय कल्याण तथा विश्व मानचित्र पर भारत को स्थान दिलाने के लिए इस संपदा का लाभ उठाना अत्यन्त आवश्यक है।

डॉ. कलाम के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

डॉ. कलाम शिक्षा को जीवन, समाज व राष्ट्र के विकास की नीव मानते हैं। उनके अनुसार शिक्षा द्वारा अधोलिखित उद्देश्यों की पूर्ति होनी अपरिहार्य है:-

उनके विचार में ज्ञान सम्पन्न मस्तिष्क उत्पन्न करने के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण है ताकि वह नये विचार दे सके। शिक्षा सीखने की प्रक्रिया होनी चाहिए न कि पढ़ने की या पुनरुत्पादन की प्रक्रिया।

- भारत को बौद्धिक महाशक्ति के रूप में विकसित काम करना एवं ज्ञान की सुरक्षा करना।
- शिक्षा का उद्देश्य छात्रों में नैतिक नेतृत्व के गुणों का विकास करना होना चाहिए। इसके साथ उद्यमी नेतृत्व के विकास की भी प्रबल आवश्यकता है।
- किसी भी कार्य या मिशन की सफलता के लिए अदम्य उत्साह की आवश्यकता होती है। भारत के चहुँमुखी विकास के लिए विभिन्न शैक्षिक केन्द्रों द्वारा शिक्षा के माध्यम से छात्रों को उत्साह सम्पन्न बनाया जाना चाहिए।

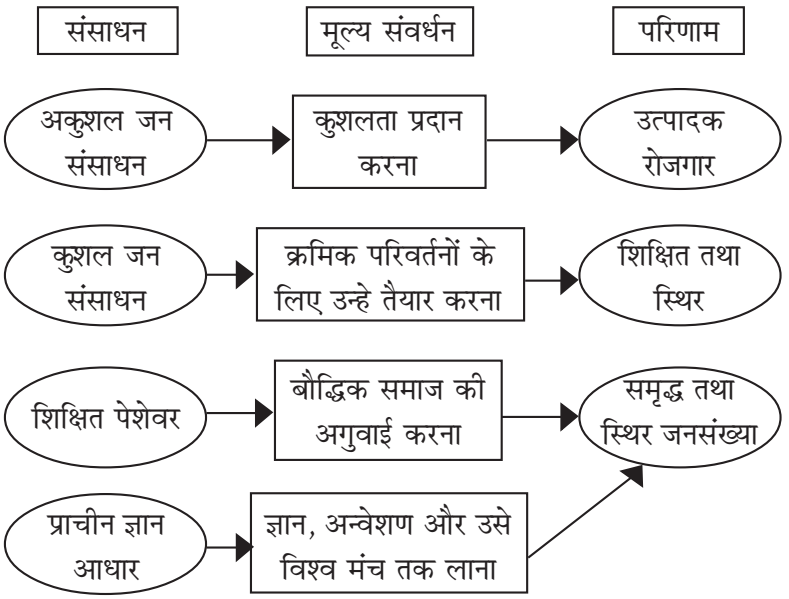

- शिक्षा द्वारा नयी पीढ़ी को अपनी कुशलता को बनाये रखने के लिए जीवनपर्यन्त ज्ञान प्राप्ति हेतु तैयार करना।
- छात्रों को आर्थिक विकास और राष्ट्र निर्माण में योगदान हेतु सक्षम बनाना।
- छात्रों के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक सामन्जस्य क्षमता का विकास और नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास भी।
- छात्रों में रचनात्मकता व सृजनात्मकता का विकास शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है।
- ऐसे योग्य ज्ञान समृद्ध नागरिकों का निर्माण करना जिनसे भारत पुनः एक ज्ञानवान समाज बन सके और अपनी पूर्व प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त कर ज्ञान की शान की महाशक्ति के रूप में विश्व पटल पर अंकित हो सके।
- शिक्षा स्वप्नों को साकार करने का साधन है कलाम बच्चों को स्वप्न देखने हेतु प्रेरित करते हैं। उन्होने कहा, ''अगर स्वप्न ही नहीं होंगे तो क्रन्तिकारी विचार जन्म नहीं लेंगे, और विचारों के न रहने से कोई कर्म भी सामने नहीं आएगा।''

''उद्देश्यपूर्ण गतिविधियों के जरियें ही विकास के रास्ते पर आगे बढ़ा जा सकता है। विशेशकर युवाओं का उचित मार्गदर्शन जरुरी है, ताकि उनके जीवन को उपयुक्त दिशा मिल सके और उनकी सृजनात्मकता भी खिल सके। इसके लिए कुछ शैक्षिक सुधारों को शुरु करना बेहद जरुरी है।''

डॉ. कलाम के अनुसार पाठ्यक्रम

''अनुभवों, क्रियाओं या जीवन की वास्तविक परिस्थितियों का संचय''। प्रो. राबर्ट मुलिच के अनुसार पाठ्यक्रम (Curriculum) 'It is a runway a course which one runs to reach a goal'

डॉ. कलाम भी पाठ्यक्रम को शिक्षा का अभिन्न अंग मानते हैं। उचित पाठ्यक्रम के द्वारा ही शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति सम्भव है। उनके अनुसार पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विशेशताएँ अपेक्षित हैं: -

- पाठ्यक्रम सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ उद्यम संबंधी ज्ञान और कुशलता के विकास में पूर्ण रूप से समर्थ हो तभी शिक्षा वर्तमान युग में उपादेय हो सकेगी।
- पाठ्यक्रम ऐसा हो जिससे छात्र उपलब्ध ज्ञान के सागर से अपने लिए उपयुक्त रास्ते को चुन सकें।
- डॉ. कलाम स्कूल कालेजों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में प्रौद्योगिकी आधारित शिक्षण को प्रमुखता देने के पक्षधर हैं। उनके अनुसार पाठ्यक्रम छात्रों में सृजनात्मकता और अभिनव परिवर्तन की प्रवृत्ति का विकास करने में सक्षम हो। छात्रों को उत्तम लक्ष्य प्राप्ति हेतु लगातार कठिन परिश्रम हेतु तैयार कर सके। पाठ्यक्रम लक्ष्यपरक होना चाहिए जिससे छात्रों को लक्ष्य निर्धारित करना सम्भव हो सके।
- पाठ्यक्रम लक्ष्यपरक होना चाहिए जिससे छात्रों को लक्ष्य निर्धारित करना सम्भव हो सके।
- छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों को भी सम्मिलित करना अनिवार्य है।
- उनके अनुसार पाठ्यक्रम नागरिक सशक्तता को सुदृढ़ करने में सक्षम तथा धर्मनिरपेक्षता व समानता मूलक सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए।

डॉ. कलाम के अनुसार विद्यालय

विद्यालय वह स्थान है जहां समाज व राष्ट्र के निहितार्थ योग्य नागरिकों, व कर्णधारों का निर्माण किया जाता है। यह शिक्षा का प्रमुख अभिकरण है। डॉ. कलाम के अनुसार ''21वीं सदी ज्ञान वृद्धि तथा उसका उपयोग संगठित ढंग से करने की सदी है।''

विद्यालय राष्ट्र निर्माण के लिए क्षमताओं के निर्माण की सर्वोत्तम संस्था है। डॉ. कलाम के अनुसार भारत को 2020 तक विकसित राष्ट्र के रूप में बदलने के स्वप्न जैसे

लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शिक्षण संस्थाओं में कुछ प्रमुख क्षमताओं का होना आवश्यक है:-

- इक्कीसवी शताब्दी ज्ञान और सूचनाओं के प्रबन्धन की है। जिसका विकास पिछली शताब्दियों में हुआ। अत: शिक्षण संस्थाओं को छात्रों में अनुसन्धान तथा अन्वेषण क्षमता का विकास करने में सक्षम होना चाहिए।
- शिक्षा संस्थाओं द्वारा छात्रों में सृजनात्मकता और अभिनव परिवर्तन की क्षमता को विकसित किया जाना आवश्यक है। सृजनात्मकता सूझबूझ वाले मस्तिष्कों में उभरती है। इसके विभिन्न आयाम जैसे– आविष्कार, खोज तथा नवीन प्रयोग हैं।
- छात्रों में उद्यमशीलता तथा नेतृत्व क्षमता के विकास का दायित्व भी विद्यालयों पर है।
- विद्यालयों में अधिगम प्रक्रिया में सहयोग के लिए नवीनतम् प्रौद्योगिकी के प्रयोग की व्यवस्था अनिवार्य है।
- शिक्षण संस्थाओं में डिजिटल लाइब्रेरी के द्वारा विद्यार्थियों को अपनी क्षमता बढ़ाने के लिए उपयुक्त वातावरण उपलब्ध होना चाहिए।
- विद्यालय छात्रों में नैतिक नेतृत्व की क्षमता को विकसित करने में भी सक्षम होने चाहिए।

डॉ. कलाम के अनुसार शिक्षक

शिक्षा की त्रिमुखी प्रक्रिया में शिक्षक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। शिक्षा के संदर्भ में शिक्षक प्राचीन काल से केंद्रबिन्दु रहा है। शिक्षक की तुलना उस मोमबत्ती से की गई है जो स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देती है।

इस प्रकार डॉ. कलाम भी शिक्षक का मार्गदर्शन छात्र के लिए अपरिहार्य मानते हैं। डॉ. कलाम शिक्षक को शिक्षा का केंद्रबिंदु मानते हैं। उनके अनुसार शिक्षक एक प्रज्वलित दीपक के समान है जो सैंकड़ो दीपकों को प्रज्वलित करता है। वे शिक्षक को बालकों का उत्तम मित्र मानते थे।

- शिक्षकों को छात्रों को स्वप्न देखने व उसे साकार रूप प्रदान करने हेतु प्रेरित करना चाहिए।
- प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षक/अध्यापक छात्रों के लिए एक आदर्श के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।
- उन्होने शिक्षक वर्ग के लिए टी. तोताडी, आयंगर, श्रीनिवास रामानुजम् तथा प्रो. एस. चन्द्रशेखर जैसे महान व्यक्तित्वों का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए छात्रों

को पढ़ाने व प्रेरित करने वाले असाधारण अध्यापकों से अग्रिम वर्षों में उनके अतुलनीय और महान कार्य को जारी रखने की अपेक्षा की है।

- डॉ. कलाम के विचार में शिक्षकों को देश का सबसे उत्तम बौद्धिक वर्ग होना चाहिए।
- शिक्षक अपनी बुद्धि तथा नैतिक मूल्यों द्वारा विद्यार्थियों को अनुसंधान के लिए आकर्षित करने व उन्हे अच्छे गुण प्रदान करने में समर्थ हों।
- उनके अनुसार विद्यार्थियों को देश के विकास का एकमात्र लक्ष्य देने के साथ-साथ अच्छा नागरिक बनाने का दायित्व शिक्षकों पर है।
- अध्यापकों के पास युवा मन को जागृत करने और उन्हें अपने आस-पास की दुनियां में संभावनाओं की तलाश करने योग्य बनाने की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है।
- डॉ. कलाम के विचार में शिक्षक का लक्ष्य उत्कृष्ट गुणों के विकास के फलस्वरूप श्रेष्ठ विद्यार्थी उत्पन्न करना है।
- अध्यापकों को बच्चों में जाति, धर्म, वर्ण, लिंग, रंग एवं आर्थिक स्तर पर आधारित भेदभाव को दूर करने में महत्पूर्ण भूमिका निभानी है।

डॉ. कलाम शिक्षकों को बच्चों के विकास को आकार देने में उनकी भूमिका के महत्व को इन शब्दों में व्यक्त करते है, ''आप केवल शिक्षक नहीं बने रह सकते, बल्कि आपको एक आदर्श के रूप में ढलना चाहिए, जिसका बच्चे सम्मान करें। आज भी मैं अपने महान शिक्षकों को सम्मान तथा आभार के साथ याद करता हूं जिन्होंने मेरे जीवन को आकार दिया।''

उनके शब्दों में ''शिक्षा तथा अध्यापक-छात्र संबंध को व्यापारिक दृष्टि से देखने की बजाय राष्ट्र के विकास को ध्यान में रखकर देखना होगा।''

डॉ. कलाम के अनुसार छात्र : डॉ. कलाम के अनुसार छात्रों को सदैव ऊँचा स्वप्न देखना चाहिए, लक्ष्य सदैव उच्च कोटि का हो :-

स्वप्न, स्वप्न, स्वप्न !!!
स्वप्न में छिपा है सृजन,
स्वप्नों की मूर्त छवि,
होते विचार हैं।
जिनसे जन्मा कर्म ,
करता निर्माण है।

- बच्चे देश एवं समाज का दर्पण है। छात्र ही शिक्षक की प्रयोगशाला है। बच्चे ही देश का भविष्य निर्धारित करें।
- चरित्रहीन शिक्षा, मानवताविहीन विज्ञान और नैतिकताविहीन व्यापार राष्ट्र एवं समाज के लिए खतरनाक होते हैं अत: प्रत्येक छात्र के पास एक उत्तम चरित्र मानवतावादी दृष्टिकोण एवं नैतिक चिंतन होना चाहिए।
- छात्रों के लिए यह आधारभूत बात समझनी आवश्यक है कि वे जीवन की अच्छी चीजों को पाने का हक रखते हैं जो ईश्वर द्वारा दी गई हैं।
- देश के जिम्मेदार और ज्ञानवान नागरिक बनने के लिए आवश्यक है कि छात्रों को इस बात का विश्वास हो कि वे विकसित भारत के नागरिक बनने योग्य है।
- अध्यापकों एवं अभिभावकों के सहयोग से बच्चों का सार्वभौमिक मूल्यों पर आधारित सम्पूर्ण विकास आवश्यक है।

डॉ. कलाम ने बच्चों से स्पष्ट रूप से तीन बाते कही है:

1. पढ़ाई में अव्वल रहो।
2. किसी दूसरे को पढ़ाओ।
3. पाँच पेड़ लगाओ।

- छात्रों में आर्थिक विकास तथा राष्ट्र निर्माण की योग्यता का विकास हो।
- छात्रों में पूर्व संचित ज्ञान के समुद्र से एक रास्ता निकालने की कुशलता विकसित हो। आज प्रौद्योगिकी के माध्यम से स्वयं सीखने की योग्यता तथा जीवनपर्यन्त विद्यार्थी बने रहना सम्भव है।
- उनमें रचनात्मक व नवप्रवर्तन की क्षमता का विकास हो, इसका महत्वपूर्ण पक्ष है अन्य किसी की तरह वही चीज देखना परन्तु कुछ अलग सोचना।
- प्रत्येक विद्यार्थी को सीखने की प्रक्रिया में नवीन प्रौद्योगिकियों के प्रयोग में सक्षम होना चाहिए।
- विद्यार्थी में उद्यमी नेतृत्व का विकास आवश्यक है। उद्यमी विकास के सन्दर्भ में सबसे पहले समस्या की पहचान और फिर उनका समाधान सम्मिलित है। बच्चों में बड़ा लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से जोखिम लेने का साहस होना चाहिए।
- एक आदर्श विद्यार्थी में अन्य गुणों के साथ नैतिक नेतृत्व का विकास भी आवश्यक है।

उपर्युक्त गुणों के विकास के फलस्वरूप विद्यार्थी में जीवन पर्यन्त सीखने की तीव्र इच्छा होगी और वह दूसरों के लिए एक उदाहरण स्थापित करने में समर्थ होगा।

- दृढ़ निश्चय से बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है। अत: छात्रों को दृढ़ निश्चयी बनना चाहिए।
- डॉ. कलाम का नवीनतम् सपना बच्चों के तेजस्वी मस्तिष्कों की मेधाशक्ति को विकसित करना है। उन्हें विश्वास है कि 'विकासशील' से विकसित देश के दर्जे तक देश के सफल रूपान्तरण में बच्चों की भागीदारी एक अनिवार्य तत्व है।
- एक प्रश्न के जवाब में उन्होंने कहा– ''बच्चा ही प्रथम वैज्ञानिक रहा होगा।''
- ''हमें किसी भी मिशन में सफल होने के लिए अदम्य उत्साह तथा विफलताओं का सामना करने और उनसे सीखने के साहस की आवश्यकता होती है।''

शिक्षण विधियाँ

डॉ. कलाम एक वैज्ञानिक होते हुए अन्त:करण से शिक्षक हैं। उन्होने अधोलिखित शिक्षण विधियों का संकेत दिया है–

- प्रदर्शन विधि
- करके सीखो
- भूल सुधार विधि
- मनोवैज्ञानिक विधि – स्वप्नद्रष्टा बनने की प्रेरणा
- अनुसंधान एवं योजना विधि
- आधुनिक संचार माध्यम द्वारा
- श्रव्य–दृश्य सामग्री प्रयोग विधि द्वारा
- चिंतन एवं मनन विधि
- क्रिया एवं अभ्यास विधि
- उपदेश एवं भाषण विधि

अनुशासन

सूर्योदय, सूर्यास्त, ज्वार–भाटा जीवन–मरण प्राकृतिक अनुशासन का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। मस्तिष्क की प्रधानता मानव को मनस्वी बनाती है। गीता में इन्द्रियों से परे मन और मन से परे आत्मा बताया जाना एवं 'मनुष्याणां बन्धनं' मोक्ष कारण की संस्तुति है।

डॉ. कलाम एक कुशल वैज्ञानिक सफल दार्शनिक मनीषी और चिन्तक हैं। उनका जीवन संतुलित संयमित है, वे जितेन्द्रिय है। "Self control is discipline" (आत्मनियंत्रण अनुशासन है) उक्ति उन पर सही उतरती है। वैज्ञानिक का प्रयोगशाली व्यावहारिक कार्य; इन्द्रियों, मन व आत्म नियंत्रण का पर्याय होता है। मिसाइल निर्माण व उसकी सफल जांच वैज्ञानिक अनुशासन की पहचान है। नैनों टेक्नोलाजी जैसे विषय पूर्ण अनुशासित वातावरण का सृजन करते हैं। उनके अनुसार अनुशासन लिखित या पठित रूप में न होकर अनुशासित जीवन के रूप में ही जिया जाय। प्रातः भ्रमण, अध्ययन, जनता दर्शन, बाल प्रेम, राष्ट्रीय विकास, वैज्ञानिक सोच, नियमित दिनचर्या, लेखन, आदि के सजीव उदाहरण है। डॉ. कलाम प्रत्येक क्षेत्र में विभिन्न कार्यों में अनुशासन को महत्व देते है। अनुशासन व्यक्ति को महानतम् शिखर पर प्रतिष्ठित करता है। वे दमनात्मक अथवा दण्डात्मक अनुशासन के पक्षधर नहीं है। आत्मनियन्त्रण का सन्देश देने वाले कलाम व्यावहारिक मानवीय अनुशासन के समर्थक हैं।

निष्कर्ष

''राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के परिप्रेक्ष्य में डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचारों का अध्ययन'' के सम्यक् मूल्यांकन हेतु किये गये विचार-विमर्श उद्देश्यानुरूप अधोलिखित रूप में प्रस्तुत है:-

1. राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचारों का अध्ययन करना।
   डॉ. कलाम शिक्षा को राष्ट्र के विकास का प्रमुख साधन मानते हैं। उन्होंने शिक्षा को अपने विचार का केन्द्रबिन्दु बनाया है।

   (क) शिक्षा की परिभाषा के संबंध में डॉ. कलाम के विचारों का अध्ययन करना–
   डॉ. कलाम के अनुसार शिक्षा ज्ञान का संरक्षण संवर्धन व प्रसार करती है। गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के विकास की पहली कड़ी है। शिक्षा एक शक्तिशाली तथा विकसित राष्ट्र का स्तम्भ और ज्ञान समृद्ध समाज का आधार है यह व्यक्ति को बौद्धिक कार्यकर्ता के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

   (ख) डॉ. कलाम के विचारों से शिक्षा के उद्देश्यों की व्याख्या करना–
   उनके अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य भारत को बौद्धिक महाशक्ति के रूप में विकसित करना एवं ज्ञान की सुरक्षा करना होना चाहिए। छात्रों में योग्य

नेतृत्व के गुणों का विकास व उद्यमी नेतृत्व के विकास की भी प्रबल आवश्यकता पर बल दिया है।

(ग) विद्यालयी पाठ्यक्रम के संबंध में डॉ. कलाम के विचारों को आलोकित करना–

पाठ्यक्रम सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ उद्यम संबंधी ज्ञान और कुशलता के विकास में पूर्णरूप से समर्थ हो तभी शिक्षा वर्तमान युग में उपादेय हो सकेगी। पाठ्यक्रम छात्रों में सृजनात्मकता और अभिनव परिवर्तन की प्रवृत्ति का विकास करने में सक्षम हो। पाठ्यक्रम नागरिक सशक्तता को सुदृढ़ करने में सक्षम तथा धर्मनिरपेक्षता व समानतामूलक सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए।

(घ) शिक्षक, छात्र व शिक्षण विधि के संबंध में उनके विचार को जानना व उनकी व्याख्या करना।

शिक्षकों को देश का सबसे उत्तम बौद्धिक वर्ग होना चाहिए। कलाम के विचार में शिक्षकों को छात्रों के लिए एक आदर्श की भूमिका निभाते हुए उन्हें अनुसंधान के लिए आकर्षित करने व उन्हें अच्छे गुण प्रदान करने में समर्थ होना चाहिए। उन्होने शिक्षकों के लिए टी. तोताडी, आयंगर, श्री निवास रामानुजम् तथा प्रो. एस. चन्द्रशेखर जैसे महान व्यक्तित्वों के उदाहरण प्रस्तुत किये।

छात्रों के पास उच्च लक्ष्य होना चाहिए। प्रत्येक छात्र के पास एक आदर्श होना आवश्यक है। उनके अनुसार प्रत्येक छात्र को यह विश्वास रखना चाहिए कि वह जीवन की सभी अच्छी चीजों को पाने का हक रखते है जो ईश्वर द्वारा दी गई है।

डॉ. कलाम मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित शिक्षण विधियों का समर्थन करते है। उनके अनुसार छात्रों की रुचि के अनुसार शिक्षण विधि का चुनाव किया जाना चाहिए। वैज्ञानिक होने के नाते वे प्रयोगशाला 'करके सीखो' योजना विधि जैसी शिक्षण विधियों के पक्षधर हैं।

संदर्भ

कलाम एंड राजन वाई.एस. (1998).2020. *ए विज़न फार द न्यू मिलेनियम,* नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स इंडिया प्रा. लि.

कलाम ए.पी.जे. एंड तिवारी (1999) *विंग्ज आफ फायर एन ऑटोबायोग्राफी.* हैदराबाद : युनिवर्सिटीज प्रेस (इंडिया) प्रा. लि.

कलाम ए.पी.जे. (2002) *इग्नाइटेड माइंड.* नई दिल्ली : पेंगुइन बुक्स इंडिया प्रा.लि.

कलाम ए.पी.जे. एंड तिवारी ए.के. (2005) *गाइडिंग शौल्स: डॉयलाग आन द परपज ऑफ लाइफ.* नई दिल्ली : ओसियन बुक्स

कलाम ए.पी.जे. एंड तिवारी ए.के. (2008) *यू आर बौर्न टू ब्लौसम : टेक माई जर्नी बियॉन्ड,* नई दिल्ली ओसियन बुक्स

कलाम ए.पी.जे. एंड तिवारी ए.के. (2012) *टर्निंग पॉइंट: ए जर्नी थ्रू चैलेंजेज,* नई दिल्ली : हार्पर कोलिन्स पब्लिशर्स

कलाम ए.पी.जे. एंड तिवारी ए.के. (2013) *स्क्वेयर द सर्कल : सेवन स्टेप्स टू इंडियन रेनैसैंस.* हैदराबाद युनिवर्सिटी प्रैस (इंडिया) प्रा. लि.

रामनाथन, आर. (2003) *हू इज कलाम? ए गुड हुमैन बिइंग,* नई दिल्ली : कोर्णाक पब्लिशर्ज प्रा.लि.